भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम भाग)

लेखक—

सत्यकेतु विद्यालंकार

प्रोफ़ेसर इतिहास गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

(मंगलाप्रसाद पारितोषिक विजेता)

प्राप्तिस्थान—

साहित्य भवन

हस्पताल रोड, लाहौर

द्वितीय संस्करण २००० } अगस्त १९३५ { मूल्य १ रुपया

प्रकाशक—

सरस्वती सदन, गुरुकुल कांगड़ी,

हरिद्वार

मुद्रक—

मलिक हरभगवानदास

नवजीवन प्रेस

हस्पताल रोड, लाहौर

प्रस्तावना

भारतवर्ष का यह इतिहास स्कूल विभाग के विद्यार्थियों के लिये लिखा गया है। हिन्दी में इस विषय पर पुस्तकों की कमी नहीं है। जब से मैट्रिकुलेशन में हिन्दी को शिक्षा और परीक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया है, तब से भारतीय इतिहास पर अनेक पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। पर उन में मैं एक कमी अनुभव करता हूँ। प्राचीन इतिहास के साथ उन में न्याय नहीं किया गया। मुसलमानों के आक्रमण से पहले के भारतीय इतिहास को उन में बहुत ही थोड़ा स्थान दिया गया है। रामायण और महाभारत की कथायें, महात्मा बुद्ध तथा मौर्य और गुप्त सम्राटों का बहुत संक्षेप के साथ जिक्र कर वे मुसलमान काल का प्रारम्भ कर देते हैं। उन्हें पढ़ कर विद्यार्थी यह समझ लेते हैं, कि भारत का प्राचीन इतिहास कोई महत्त्व ही नहीं रखता। पर यदि असल में देखा जाय, तो भारतीय इतिहास का स्वर्णीय काल मुसलमानों के आक्रमण से पहले था। उस समय भारत सभ्यता, संस्कृति, धर्म और साहित्य की दृष्टि से सारे ससार का अगुआ था। भारत के प्रचारक देश-विदेश में जाकर अपने धर्म और सभ्यता का प्रचार करते थे। हजारों आदमी भारत से बाहर जाकर नये उपनिवेश बसाते थे और इस तरह भारत की शक्ति और सभ्यता का विस्तार करते थे। भारत की राजनीतिक शक्ति भी कुछ कम न थी। भारत के सम्राटों ने हजारों मील की विजय-यात्रायें की थीं, और अपने विशाल साम्राज्यों का

निर्माण किया था। उस समय भारत में जीवन था, स्फूर्ति थी और दूसरी जातियों को अपने में मिला लेने की शक्ति थी। यवन, कुशान, शक, हूण आदि कितनी जातियां भारत में बाहर से आईं और यहां के लोगों के संसर्ग में आकर यहीं की बन गईं। इस पुस्तक में मैं ने भारत के गौरवमय प्राचीन इतिहास के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया है।

भारतीय इतिहास के मुसलमान काल को लिखते हुए भी मैंने विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि को अपने सामने रखा है। तुर्कों व अफ़ग़ानों के हमले शुरू होते ही भारत इन जातियों के हाथ में नहीं चला गया था। जिस काल को अनेक पुस्तकों में अफ़ग़ान काल व मुसलमान काल के नाम से लिखा जाता है, उस काल में भारत का बहुत-सा प्रदेश स्वतन्त्र था। अधिकांश भारत पर उस समय राजपूत व अन्य हिन्दू राजा राज्य करते थे। मुसलमानों के शासन का वृत्तान्त लिखते हुए मैंने पूर्णतया निष्पक्ष होने का प्रयत्न किया है।

मुझे आशा है, हिन्दी संसार में इस इतिहास का समुचित आदर होगा। भारतीय इतिहास में निरन्तर नई-नई खोजें होती जा रही हैं। इतिहास के अध्ययन की प्रणाली में भी नवीन सिद्धान्त आविष्कृत हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रारम्भिक विद्यार्थियों के हाथ में जो पुस्तकें दी जावें, वे शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी गई हों और उन में यथासंभव नये से नये ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश हो। मैं समझता हूँ कि इस पुस्तक से यह ज़रूरत कुछ न कुछ अंश तक अवश्य पूर्ण होगी।

—सत्यकेतु विद्यालंकार

विषय-सूची

—:—:—

भारतवर्ष का इतिहास

प्रथम भाग

चित्र-सूची

—०—

पहला अध्याय

भारतभूमि और उसके निवासी

प्रकृति ने भारतवर्ष को एक दुर्ग के समान बनाया है। इसके उत्तर में हिमालय की ऊँची और दुर्गम पर्वतमाला है। पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में इसे महासमुद्र ने घेरा हुआ है। इस देश के उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व कोनों पर समुद्र नहीं है, पर उनकी रक्षा करने के लिए भी अनेक पहाड़ हैं, जो हिमालय से शुरू होकर समुद्रतट तक फैले हुए हैं। जैसी सुन्दर और स्वाभाविक सीमा भारतवर्ष की है, वैसी शायद ही किसी अन्य देश की हो।

विस्तार—भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। इसका क्षेत्रफल डेढ़ लाख वर्गमील के लगभग है। भारत का समुद्र तट ही ३४०० मील है। इसकी सीमा पर जो पहाड़ हैं, उनकी लम्बाई १५०० मील के लगभग है। इस देश में ३५ करोड़ मनुष्य बसते हैं। भारतवर्ष इतना बड़ा देश है, कि इसमें सब प्रकार की प्राकृतिक और भौगोलिक दशाएँ पाई जाती हैं। ठण्डी से ठण्डी और गरम से गरम आबोहवा इस देश में मिल सकती है। एक तरफ़ जहां इसमें संसार की सब से ऊँची पर्वतमाला है, जो सदा बर्फ़ से ढकी रहती है, वहां दूसरी तरफ़ ऐसी भी ज़मीनें हैं, जिनकी ऊँचाई समुद्र की सतह के क़रीब-क़रीब बराबर ही है। इस देश में कहीं सघन और भयंकर जंगल हैं, तो कहीं हरे भरे लहलहाते

उपजाऊ मैदान हैं। जिस तरह यहां प्रकृति में इतना भेद है, उसी तरह यहां के निवासियों में भी बहुत-सी भिन्नतायें नज़र आती हैं। सभ्य से सभ्य और जंगली से जंगली आदमी यहां मिल सकते हैं। इस देश में बहुत-सी भाषाएँ, बहुत-सी जातियां और अनेक तरह के धर्म विद्यमान हैं।

भारतवर्ष के इतिहास पर यहां की भौगोलिक और प्राकृतिक दशाओं ने बहुत प्रभाव डाला है। भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष के चार भाग हैं—

(१) हिमालय और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले पर्वत, (२) उत्तरीय भारत के मैदान, (३) विन्ध्याचल का प्रदेश, (४) दक्षिणी भारत।

हिमालय—इसकी पर्वतमालाएँ १५०० मील के लगभग लम्बी तथा १५० से २०० मील तक चौड़ी हैं। हिमालय का यह विस्तृत प्रदेश अनेक स्थानों पर आबाद है। इसकी मनोहर घाटियों में अनेक जातियां प्राचीन काल से बसती आई हैं। हिमालय के प्रदेशों में अनेक शक्तिशाली राज्य भी पुराने समयों में क़ायम होते रहे। हिमालय की यह लम्बी पर्वतमाला भारत के लिए सन्तरी का काम करती है। विदेशियों के लिए यह सुगम नहीं है कि वे इसे पार कर भारत पर हमला करें। पर इस दुर्गम पर्वतमाला के होते हुए भी भारत का बाहरी दुनिया से सम्बध टूटा नहीं। कारण यह कि इसमें बहुत-से ऐसे दर्रे हैं, जिन से जहां अनेक विदेशी जातियां समय-समय पर भारत में प्रवेश करती रहीं, वहां भारत के लोग भी अपनी सभ्यता और धर्म का प्रचार करने या उपनिवेश बसाने के लिए बाहर जाते रहे।

उत्तरीय भारत का मैदान—उत्तरीय भारतवर्ष एक विशाल

मैदान है; जो १५०० मील लम्बा है। इस विशाल मैदान को नदियों के दो जाल सींचते हैं, जिनका निकास लगभग एक ही जगह से है। नदियों का एक जाल पंजाब का है और दूसरा गंगा तथा उसकी सहायक नदियों का। पंजाब की नदियां दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हैं और गंगा का प्रवाह दक्षिण-पूर्व की तरफ है। इस से स्पष्ट है कि यमुना और सतलज के बीच का प्रदेश ऊँचा तथा जल का विभाजक है। इसी प्रदेश में राजपूताना का रेगिस्तान और अरावली की पर्वतमाला फैली हुई है। इस प्रकार उत्तरीय भारत के मैदान के तीन मुख्य हिस्से हो जाते हैं—(१) गंगा का मैदान (२) पंजाब या सिन्ध का मैदान और (३) राजपूताना।

उत्तरीय भारत का यह मैदान संसार के अत्यन्त उपजाऊ इलाकों में से है। सभ्यता का विकास पहले पहल नदियों की उपजाऊ घाटियों में ही होता है। भारत में भी गंगा और सिन्ध के ये मैदान अत्यन्त प्राचीन काल से सभ्यता के महान केन्द्र रहे हैं। इन दोनों नदियों की घाटियों में प्राचीन भारतीयों ने अपनी उन्नत सभ्यता का विकास किया था। इन में अनेक जातियों ने अपने स्वतन्त्र राज्य कायम किये थे, जो अपनी उन्नति तथा साम्राज्य निर्माण के लिये सदा तत्पर रहते थे।

विन्ध्याचल—भारतवर्ष के ठीक बीच में विन्ध्याचल की सुदीर्घ पर्वतमाला है, जो पूर्व से लेकर पश्चिम तक चली गई है। यह उत्तरीय और दक्षिणी भारत को पृथक् करती है। विन्ध्याचल की पहाड़ियां, जंगल तथा पथार (ऊँची भूमि) हज़ारों वर्ग मील में फैले हुए हैं। मालवा, बुन्देलखण्ड, दक्षिणी राजपूताना, बघेलखण्ड और छोटा नागपुर के प्रदेश विन्ध्याचल के

क्षेत्र में सम्मिलित हैं। इन प्रदेशों का इतिहास उत्तरीय और दक्षिणी भारत से पृथक् रहा है।

दक्षिण—विन्ध्याचल के दक्षिण में त्रिभुज की शक्ल का जो विस्तृत पथार है उसे दक्षिणी भारत कहते हैं। इस में दो मुख्य पर्वत हैं, जो विन्ध्याचल से शुरू होकर उत्तर से दक्षिण की तरफ़ फैले हुए हैं। इन्हें पूरवी घाट और पश्चिमी घाट कहते हैं। दक्षिणी भारत पश्चिम की तरफ़ बहुत ऊँचा है और पूर्व की तरफ़ निरन्तर नीचा होता जाता है। यही कारण है, जिससे दक्षिण की सब नदियां पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं। दक्षिण, उत्तरीय भारत से प्रायः पृथक् रहा है। यद्यपि उत्तर के अनेक सम्राटों ने कई बार इसे जीत कर अपने साम्राज्य में शामिल किया, पर इसका इतिहास शेष भारत से प्रायः पृथक् ही रहा है। दक्षिणी भारत में न बड़ी नदियां हैं और न विस्तृत मैदान। उसका अधिकांश भाग पहाड़ी और ऊसर है। उपज की दृष्टि से उसका उत्तरीय भारत से कोई मुकाबला नहीं। यही कारण है कि दक्षिण ने भारत के इतिहास में उतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं किया, जितना कि उत्तरीय भारत ने। राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि उत्तरीय और दक्षिणी भारत प्रायः एक साथ नहीं रहे। पर इस में सन्देह नहीं कि सभ्यता और धर्म के क्षेत्र में उन में बहुत सम्बन्ध रहा है।

समुद्र तट—भारत का समुद्रतट बहुत लम्बा है। प्राचीन भारतीय इसका भी भलीभांति उपयोग करते रहे। भारत के पूर्वी और पश्चिमी दोनों तटों पर अनेक बन्दरगाह थे, जिन से यहां के लोग व्यापार के लिये दूर देशों में जाया करते थे। बहुत से भार-

तीय इन बन्दरगाहों से समुद्र के पार के देशों में उपनिवेश बसाने के लिये भी गये।

भारत बहुत बड़ा देश है। यही कारण है कि प्राचीन समय में यहां बहुत से राज्य थे। उस ज़माने में जब रेल, तार आदि का आविष्कार नहीं हुआ था, यह कितना कठिन काम था कि डेढ़ लाख वर्ग मील के इस महान् देश में—जहां पहाड़, मैदान, रेगिस्तान और जंगल सब कुछ हैं, एक साम्राज्य का विकास हो। पर फिर भी भारतीय लोग इस के लिये कोशिश में लगे थे। प्राचीन भारत में मौर्य, गुप्त, वर्धन आदि वंशों के सम्राटों ने जो साम्राज्य बनाये, वे उन साम्राज्यों से किसी तरह कम न थे, जो उस ज़माने के अन्य देशों के लोगों ने बनाये थे। भारत जो स्थिर रूप से किसी एक शासन के नीचे नहीं आसका, उस का मुख्य कारण इस देश की विशालता तथा यहां की भौगोलिक दशाओं का इतनी विविध किसमों का होना है।

विविध जातियां—भारत के निवासी किसी एक जाति के नहीं हैं। यहां बहुत सी जातियां पाई जाती हैं। जाति की दृष्टि से हम भारत के निवासियों को निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं—

१. *आर्य जाति*—यह भारत की मुख्य जाति है। भाषा की दृष्टि से भारत में आर्य भाषाओं को बोलने वालों की संख्या १०० में ७६ के लगभग है। उत्तरीय भारत में प्रायः आर्य जाति के लोग ही निवास करते हैं।

२. *द्राविड़ जाति*—ये प्रायः दक्षिणी भारत में बसते हैं। इनकी सभ्यता भी बहुत प्राचीन है। वर्तमान समय में द्राविड़ भाषा बोलने वालों की संख्या १०० में २१ के लगभग है।

३. *मुण्ड जाति*—इसके लोग प्रायः जंगली दशा में हैं, और छोटा नागपुर, छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा के प्रदेशों में रहते हैं।

४. *किरात जाति*—इसके लोग आसाम, सिक्कम तथा उत्तर-पूर्वी हिमालय में निवास करते हैं। मुण्ड और किरात-दोनों जातियों की भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या केवल ३ प्रतिशत है।

यद्यपि भारत के निवासियों में मुख्यतया ये चार जातियां पृथक्रूप से दिखाई देती हैं, पर इनमें मिश्रण भी खूब हुआ है। विशेषतया आर्य और द्राविड़ जातियों का खून आपस में भलीभांति मिल चुका है। केवल खून ही नहीं, इनकी सभ्यता का भी आपस में खूब सम्मिश्रण हुआ है। भारत मुख्यतया आर्यों का देश है। उन्होंने अन्य जातियों को अपने अन्दर मिलाकर उन पर अपनी सभ्यता की छाप अच्छी तरह लगा दी है। उन्होंने दूसरी जातियों की सभ्यता को नष्ट नहीं कर दिया, पर अपने रंग में भलीभांति रंग दिया। यही कारण है कि भारत में विविध जातियों के बसते हुए भी यहां की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास एक ही है।

दूसरा अध्याय

इतिहास का प्रारम्भ

भारतवर्ष बहुत पुराना देश है। इस का इतिहास भी बहुत पुराना है। अत्यन्त प्राचीन काल से यहां विविध जातियां अपनी सभ्यताओं का विकास करती रही हैं।

सिन्धु नदी की घाटी में सभ्यता का विकास---भारतवर्ष में सभ्यता के सब से पुराने चिन्ह सिन्धु नदी की घाटी में मिले हैं। पंजाब के मिएटगुमरी ज़िले में एक स्थान है, जिस का नाम है हड़प्पा। इसी तरह सिन्ध प्रान्त में एक स्थान मोहनजोदड़ो है। ये दोनों सिन्धु नदी की घाटी में स्थित हैं। इनमें खुदाई करने पर किसी अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के अविशेष मिले हैं। ये अवशेष जिन लोगों के हैं, वे अच्छे बड़े नगरों में निवास करते थे। उन के मकान स्वच्छ, सुन्दर तथा हवादार होते थे। मकानों से गन्दे पानी को निकालने के लिये नालियां बनी हुई थीं, जो ज़मीन के नीचे जाने वाली एक बड़ी नाली में गिरती थीं। शहर का सारा गन्द ज़मीन के नीचे-नीचे जाकर बाहर चला जाता था। ये लोग सुन्दर मूर्तियां बनाते थे। मूर्ति बनाने तथा तरह-तरह के सुन्दर बरतन बनाने की कला इन में पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। ये लोग लिखना भी जानते थे। इनके जो लेख मिलते हैं, उन्हें अभी तक पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका। इन स्थानों पर बहुत से आभूषण भी मिले हैं, जिन की गढ़ाई इतनी सुन्दर है कि बीसवीं सदी के जौहरी भी उन पर गर्व कर सकते हैं। सिन्धु नदी की

यह सभ्यता बहुत प्राचीन है। सब विद्वान इस बात पर सहमत हैं, कि यह ईस्वी सन से कम से कम चार व पांच हज़ार साल पहले की है। दुनियां में अन्य किसी भी सभ्यता को इससे ज्यादा प्राचीन नहीं माना जाता।

द्राविड़ जाति---भारत की पुरानी जातियों में द्राविड़ लोग बहुत प्राचीन हैं। आजकल ये लोग दक्षिणी भारत में रहते हैं, पर पहले उत्तरी भारत में भी इनका निवास था। बलोचिस्तान में एक बोली पाई जाती है, जिसे ब्रहुई कहते हैं। यह द्राविड़ भाषाओं से बहुत मिलती जुलती है। इस से साबित होता है कि उत्तरी भारत में भी पहले द्राविड़ लोग बसते थे। ये द्राविड़ लोग सभ्यता की दृष्टि से बहुत उन्नत थे। इनका मुख्य पेशा खेती था। पर खेती के साथ-साथ ये बहुत से व्यवसायों और शिल्पों में भी निपुणता प्राप्त किये हुए थे। धातु का उपयोग ये अच्छी तरह जानते थे। मकान भी इनके बहुत सुन्दर तथा पक्के होते थे। उनकी भाषायें बहुत उन्नत थीं। उनकी मुख्य भाषायें तामिल, तेलगू, मलयालम और कनाडी हैं। इन भाषाओं के पुरानेसाहित्य को देखने से मालूम पड़ता है कि द्राविड़ लोगों की कविता, धर्म आदि बहुत काफ़ी उन्नत थे। आगे चलकर द्राविड़ों के आर्यों से बहुत से युद्ध हुए। आर्यों के साथ युद्ध का ही यह परिणाम हुआ कि वे उत्तरी भारत में बसे नहीं रह सके। आर्यों के संसर्ग से द्राविड़ों के धर्म और सभ्यता में बहुत परिवर्तन आया।

आर्य जाति---आर्य एक बहुत बड़ी जाति का नाम है, जो भारत से लेकर यूरोप तक निवास करती है। यूरोप, पश्चिमी एशिया और भारत के निवासी आर्य जाति के ही हैं। यदि हम अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेञ्च, लैटिन, ग्रीक, रूसी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी

आदि वर्तमान भाषाओं के शब्दों पर ध्यान दें, तो हमें उन में आश्चर्यजनक समता दिखाई देगी। संस्कृत के 'पितृ' और 'मातृ' शब्द को ही लीजिये। फ़ारसी में इन्हें 'पिदर' और 'मादर' लेटिन में 'पेटर' और 'माटर', ग्रीक में 'पेटेर' और 'माटेर', अंग्रेज़ी में 'फ़ादर' और 'मदर' और जर्मन में 'फातर' और 'मुटर' कहते हैं। इसी तरह अन्य भी सैकड़ों शब्दों में समता दिखाई जा सकती है। इन भाषाओं की व्याकरण सम्बन्धी बनावट में भी बहुत सी समतायें हैं। इन बातों से यह ज्ञात होता है कि इन सब भाषाओं के बोलने वाले लोग एक ही जाति के हैं और वे किसी समय एक ही स्थान पर निवास करते थे। इस विशाल जाति के लिये अनेक शब्द प्रयोग में लाये गये हैं। इन्हें 'इण्डो जर्मन', 'इण्डो यूरोपियन', और 'आर्य' आदि अनेक नामों से कहा गया है। पर हम सुगमता के लिये 'आर्य' शब्द ही प्रयोग में ला रहे हैं।

आर्यों का आदिम निवास स्थान—ये आर्य जातियां एक साथ किस समय और किस स्थान पर निवास करती थीं, इस सम्बन्ध में बहुत से मत हैं। कुछ लोग आर्यों का आदिम निवास-स्थान मध्य एशिया मानते हैं, तो कुछ उत्तर-पूर्वी यूरोप। लोकमान्य तिलक ने सिद्ध किया है कि आर्य जातियां पहले उत्तरी ध्रुव के प्रदेश में बसती थीं। अनेक विद्वानों का मत है कि आर्य लोगों का आदिम निवासस्थान 'सप्त सैन्धव' देश है। सप्त सैन्धव देश का मतलब पंजाब की पांच नदियों और गंगा यमुना के बीच के प्रदेश से है। इन में से कौन-सा मत ठीक है, इस पर हमें यहां बहस करने की आवश्यकता नहीं।

आर्यों का विस्तार—कोई भी पक्ष ठीक हो, पर आर्यों की

जिस शाखा ने भारत में अपना विस्तार किया, उसे अन्य जातियों के साथ बहुत से युद्ध करने पड़े। आर्यों का भारत में विस्तार धीरे-धीरे हुआ। वे दूसरी जातियों को जीतते हुए आगे बढ़ते गये। जहां भी वे गये, उन्होंने अपने राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार धीरे-धीरे भारत में बहुत से आर्य राज्यों का विकास हुआ।

तीसरा अध्याय

वैदिक काल

आर्य जाति का सब से प्राचीन साहित्य वेद है। वेद चार हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। आर्यों में उनका मान इतना अधिक है, कि उन्हें अन्तिम प्रमाण और ईश्वरीय ज्ञान माना गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार के पुस्तकालय में वेद ही सब से प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदों का भारत में इतना अधिक महत्त्व है कि इस देश के अनेक दर्शन ग्रन्थ ईश्वर तक को नहीं मानते, पर वेद को अनादि और प्रामाणिक रूप से स्वीकृत करते हैं।

वेदों का काल——वेद बहुत प्राचीन हैं। वे कब बने, इस विषय में बहुत से मतभेद पाए जाते हैं। आर्य जाति का विश्वास तो यह है कि वे सृष्टि के शुरू में बने थे। पर आज कल के बहुत से विद्वान इस बात को नहीं मानते। मैक्स मूलर ने वेदों का काल ईसा से १२०० वर्ष पूर्व नियत किया था। पर यूरोप के विद्वानों ने ही उसका खण्डन किया। प्रो० जैकोबी के अनुसार वेद ईसा से ४५०० वर्ष पूर्व बने। लोकमान्य तिलक वेदों का काल और पीछे ले गये। उन्होंने सिद्ध किया कि वेदों को बने ८००० साल हो गए हैं। अब डा० अविनाशचन्द्रदास ने वेदों को और भी प्राचीन सिद्ध किया है। हम देखते हैं कि आज कल विद्वानों का मत वेदों के समय के सम्बन्ध में निरन्तर बदल रहा है और इन्हें अधिक प्राचीन समझा जाने लगा है।

अन्य वैदिक साहित्य—चार मूल वेदों के सिवा, जिन्हें संहिता कहते हैं, अन्य भी बहुत से ग्रन्थ हैं, जिन्हें वैदिक-साहित्य में सम्मिलित किया जाता है।

१. *ब्राह्मण ग्रन्थ*—ये वेदों की व्याख्या के लिये लिखे गये हैं। इनमें वैदिक मन्त्रों को स्पष्ट करने के साथ-साथ यज्ञों तथा अन्य विधिविधानों में उनका विनियोग बताया गया है।

२. *उपनिषद्*—इनमें ब्रह्मविद्या का वर्णन है।

३. *सूत्र ग्रन्थ*—ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों तथा विधि विधानों का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया था। पीछे अनुभव किया गया कि इन्हें संक्षेप से सूत्र रूप में लिखने की आवश्यकता है। इसी लिए सूत्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

४. *उपवेद*—उपवेद चार हैं;—आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्पवेद और गान्धर्ववेद।

५. *वेदांग*—वेदाङ्ग छः हैं;—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प। इन छहों पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी गईं।

वैदिक साहित्य के ये अन्य ग्रन्थ वेदों के बाद बने। पर इसमें शक नहीं कि इनका निर्माण भी ईसवी सन के शुरू होने के कई सदी पूर्व हो चुका था।

वैदिक काल की सामाजिक दशा—इस विशाल वैदिक साहित्य से हमें उस काल की सभ्यता के सम्बन्ध में बहुत-सी उपयोगी बातें ज्ञात होती हैं। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत ऊँची थी। उन्हें घर की 'साम्राज्ञी' समझा जाता था। पत्नी के बिना किसी गृहस्थ का यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता था। स्त्रियां

सार्वजनिक जीवन में खुले तौर पर भाग लेती थीं। उस समय परदे की प्रथा नहीं थी। जो लोग अपने घर में आते थे, स्त्रियां उनसे स्वतन्त्रता से बात करती थीं। उस समय स्त्रियां शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। वेदों के अनेक सूक्तों की ऋषि स्त्रियां हैं। विश्वारा घोषा आदि अनेक स्त्रियों ने मन्त्रद्रष्टा होकर ऋषि पद को प्राप्त किया था। गार्गी, मैत्रेयी आदि अनेक स्त्रियां ब्रह्मविद्या में प्रवीण मानी जाती थीं। सामान्यतया इस काल में पुरुष एक ही विवाह करते थे। पर कुछ स्थानों पर एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह का भी ज़िक्र आता है। स्त्रियों का पुनर्विवाह भी इस काल में हो सकता था। वैदिक काल के लोग आपस में मिलकर रहना और मिलकर कार्य करना सामाजिक जीवन का आदर्श मानते थे। वे आमतौर से प्रार्थना किया करते थे कि "हम सब परस्पर मिल कर रहें, मिलकर परस्पर वार्तालाप करें और हम सब के विचार, मन एक जैसे हों।"

आर्यों का सदाचार का आदर्श बहुत ऊँचा था। उनका सिद्धान्त था कि सब प्राणियों को हमें मित्र की दृष्टि से देखना चाहिए। वे सारे संसार को सत्य पर आश्रित मानते थे। सत्य उनके जीवन का सब से बड़ा आदर्श था।

राजनीति—वैदिक काल में भारत में बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे। इन राज्यों की शासनविधि बहुत उत्तम थी। जनता सभा और समितियों में एकत्रित होकर अपने राजकीय मामलों का स्वयं निबटारा करती थी। इन सभा समितियों में सब को व्याख्यान देने का हक़ था। लोग दूसरों को अपने पक्ष में करने के लिए खूब अच्छे वक्ता बनने का प्रयत्न करते थे। राजा की नियुक्ति भी जनता करती थी। जनता की स्वीकृति के बिना कोई

राजा नहीं बन सकता था।

आर्थिक दशा—वैदिक काल में लोगों का मुख्य पेशा कृषि था। किसान अपनी ज़मीन के स्वयं मालिक होते थे। किसान अपने पशुओं के साथ बड़े सुख से जीवन व्यतीत करते थे। पशुओं की उस समय बहुत अधिकता थी। पर किसानों के सिवा दूसरे व्यवसायों की भी कमी नहीं थी। वैदिक साहित्य में जुलाहों का वर्णन आता है, जो कपास, ऊन और रेशम के बड़े महीन और सुन्दर वस्त्र बनाते थे। धातुओं के बर्तन तथा अन्य सामान भी उस समय बना करते थे। लोहारों और मिस्त्रियों का समाज में बड़ा सम्मान था। वे गाड़ियों और रथों के सिवा जहाज़ों का भी निर्माण करते थे। सुनार लोग सोने चांदी के तरह-तरह के आभूषण तैयार करते थे। आभूषणों का उस समय बहुत रिवाज था। न केवल स्त्रियां पर पुरुष भी बड़े शौक़ से आभूषण पहना करते थे।

धर्म—वैदिक काल के धर्म में यज्ञों की प्रधानता थी। प्रत्येक गृहस्थ अपने घर में अग्नि की स्थापना करता था और उस में प्रतिदिन वेदमन्त्रों के साथ आहुतियां दी जाती थीं। इस दैनिक यज्ञ के अतिरिक्त बहुत से विशेष यज्ञ समय-समय पर किए जाते थे।

वर्णाश्रम व्यवस्था—आर्यों के सामाजिक संगठन का मूल सिद्धान्त वर्णाश्रम व्यवस्था है। सारे जन समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया है। ये चार वर्ण हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मणों का काम विद्या पढ़ना और पढ़ाना तथा धार्मिक विधि-विधानों और संस्कारों को कराना है। क्षत्रियों का काम शत्रुओं से देश की रक्षा करना तथा जनता का पालन करना है। वैश्य रुपये कमाने, खेती, व्यवसाय तथा अन्य शिल्पों का अनु-

सरण करने के लिए हैं। शूद्र का काम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना है। सारे आर्य इन्हीं चार वर्णों में विभक्त थे। प्रत्येक मनुष्य से आशा की जाती थी कि वह अपने ही वर्ण का कार्य करे। पर एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जा सकना असम्भव नहीं होता था। वर्णों की तरह आश्रम भी चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। आर्य लोगों में सारे जीवन को घर के झंझटों में ही व्यतीत नहीं कर दिया जाता था। पहले पच्चीस साल ब्रह्मचर्य के साथ निवास कर गृहस्थ में प्रवेश किया जाता था और पच्चीस साल गृहस्थ चला कर आदमी घर को छोड़ देता था। जंगल में जाकर स्वाध्याय में अपने समय को व्यतीत करता था और फिर सन्यासी बन कर परोपकार में अपने जीवन को अर्पित देता था।

चौथा अध्याय

आर्यों के प्राचीन राज्य

हम पहले बता चुके हैं कि आर्यों का विस्तार भारत में धीरे-धीरे हुआ। उन्होंने इस देश में अपने बहुत से राज्य स्थापित किये। इन राज्यों की संख्या सैंकड़ों में थी। आर्यों के राज्य छोटे-छोटे होते थे। वे एक बड़े परिवार के समान होते थे। जिन में लोग मिल कर अपने मामलों का स्वयं निपटारा कर लेते थे। धीरे-धीरे आर्यों के ये राज्य शक्तिशाली और विस्तृत होते गये। बहुत-से राजाओं ने दूसरे राज्यों को जीत कर अपने साम्राज्य भी बनाये। आर्य राजा 'चक्रवर्ती' व 'सार्वभौम' बनने का आदर्श सदा अपने सामने रखते थे। इसका मतलब यह है कि वे सारी पृथिवी को जीत कर अपने अधीन करने की सदा कोशिश करते रहते थे। इसी का परिणाम था कि भारत में बहुत से राजवंश निरन्तर अधिक अधिक शक्तिशाली होते गये।

इक्ष्वाकु वंश—इन राजाओं में कौशलया का इक्ष्वाकु वंश बहुत प्रसिद्ध है। इस की राजधानी अयोध्या थी। इस वंश में मानधाता नाम का एक राजा हुआ, जिसने कौशल देश की शक्ति को बहुत विस्तृत किया। मानधाता ने उत्तरीय भारत के बहुत से राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया था और उसका राज्य दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। मानधाता के बाद इक्ष्वाकु वंश में सगर, भगीरथ, दिलीप और रघु नाम के प्रतापी राजा हुए। पुराणों और संस्कृत की अन्य पुस्तकों में इन

राजाओं के विषय में बहुत-सी कथाएँ दी हुई हैं। पर इक्ष्वाकु वंश के सब से प्रसिद्ध राजा रामचन्द्र हुए हैं, जिन की कथा बड़े विस्तार के साथ रामायण में दी गई है। रामायण भारतवर्ष की बहुत प्रतिष्ठित तथा मान्य पुस्तक है। भारत की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो, जिस में रामायण का अनुवाद न हो चुका हो। इसे वाल्मीकि नाम के ऋषि ने बनाया था। रामायण की कथा को लेकर संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं में हज़ारों पुस्तकें लिखी गई हैं। शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो, जो राम की कथा न जानता हो। राम का चरित्र ही ऐसा है कि आर्य जाति उसे कभी भुला नहीं सकती। रामचन्द्र इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने दक्षिण भारत में रहने वाली अनेक राक्षस जातियों को जीत कर अपने अधीन किया था। उन के समय में कौशल राज की शक्ति नर्मदा नदी के दक्षिण में भी पहुंच गई थी।

रायमाण की कथा—अयोध्या के राजा दशरथ की तीन रानियां थीं। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। इनके चार पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या के राम, कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न। एक बार ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आये। उन्होंने कहा—राजन्! राक्षस लोग हमारे यज्ञों में विघ्न डालते हैं। यदि आप अपने पुत्र राम और लक्ष्मण को यज्ञों की रक्षा के लिये हमें दे सकें तो बड़ी कृपा हो। राजा पहले तो अपने बालकों को अकेले जंगल भेजने में बहुत आनाकानी करने लगे। पर फिर महर्षियों के ज़ोर देने पर तैयार हो गये। राम, लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ जाकर राक्षसों का संहार किया और अपनी वीरता का परिचय दिया।

इसी बीच में मिथिला के राजा जनक अपनी कन्या सीता का

विवाह करने के लिये स्वयंवर रच रहे थे। जनक के पास एक प्राचीन धनुष था। उन्होंने निश्चय किया कि जो व्यक्ति इस धनुष को तोड़ देगा, उसी से सीता का विवाह करदेंगे। स्वयंवर सभा में दूर-दूर से राजा लोग एकत्र हुए। राम और लक्ष्मण भी विश्वामित्र के साथ स्वयंवर में पहुंचे। जिस धनुष को तोड़ने में बड़े-बड़े वीर राजा असफल हो गये, उसे बालक रामचन्द्र ने तोड़ दिया। प्रसन्न होकर जनक ने राम के साथ सीता का विवाह कर दिया। विवाह करके रामचन्द्र अयोध्या लौट आये और सुखपूर्वक घर रहने लगे।

राजा दशरथ अब वृद्ध हो गए थे। उन्होंने चाहा कि अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र को युवराज बना कर राज्य का भार उन पर डाल दें। यह बात कैकेयी को बुरी लगी। दशरथ ने एक बार कैकेयी की सेवा से प्रसन्न होकर उससे दो वर मांगने को कहा था। अब उसने वे मांगे। वर ये थे कि रामचन्द्र को १४ वर्ष का वनवास दिया जाय और राजगद्दी भरत को मिले। राजा दशरथ कैकेयी के ये वर सुनते ही मूर्छित होकर गिर पड़े। जनता में भी यह शोक छागया। जनता को रामचन्द्र बहुत प्रिय थे। उन का १४ वर्ष का वनवास उन्हें सहन नहीं हो सकता था। पर अब क्या हो सकता था। राजा वचनबद्ध थे। रामचन्द्र स्वयं वन जाने के लिए तैयार हो गये। पतिव्रता सीता भी राम के साथ वन जाने के लिए ज़िद करने लगी। राम ने उन्हें बहुत समझाया। पर वह एक न मानीं। लक्ष्मण का भी अपने भाई से बहुत प्रेम था। वह भी वन जाने के लिए आग्रह करने लगा।

अब राम, सीता और लक्ष्मण वन की ओर चले। पर बूढ़े राजा दशरथ पुत्रों का वियोग सहन नहीं कर सके। उन की शीघ्र ही मृत्यु होगई। भरत इस समय अपने मामा के यहां गए हुए थे।

जब वे लौट कर आए तो उन्हें सब हाल मालूम पड़ा। वे अपनी माता पर बहुत नाराज़ हुए। उन्हों ने भरपूर कोशिश की कि राम को वन से लौटा लायें। पर रामचन्द्र अपने पिता के वचन को असत्य नहीं होने देना चाहते थे। निराश हो कर भरत वापस लौट आए और अपने भाई राम की खड़ाऊँ को राजगद्दी पर स्थापित कर स्वयं राजा के प्रतिनिधि रूप में राज्य करने लगे।

रामचन्द्र अयोध्या से चल कर चित्रकूट पहुँचे। वहां से वे दण्डकारण्य गए। यह उस समय बड़ा भारी जंगल था। यहां राक्षस लोग उन्हें तंग करने लगे। एक दिन राक्षसों का राजा रावण वेश बदल कर आया और धोखा दे कर सीता को हर ले गया। उस समय राम और लक्ष्मण शिकार के लिए गए हुए थे। जब वे वापस लौट कर अपनी कुटी में आए, तो सीता को न देख कर बहुत घबराये। सीता की खोज करते-करते उन की किष्किन्धापुरी के राजा सुग्रीव से मित्रता हुई। सुग्रीव की सहायता से उन्हों ने सीता का पता लगाया और रावण को हरा कर सीता को छुड़ाने के लिए कोशिश करने लगे।

रावण सीता को अपनी पटरानी बनाना चाहता था। उस ने उसे बहुत फुसलाया। पर सीता सच्ची पतिव्रता थीं। वह अपने धर्म से कब डिगने वाली थीं। अन्त में राम ने सुग्रीव की वानर-सेना के साथ रावण की राजधानी लङ्का पर हमला किया। राक्षस लोग हार गए, रावण मारा गया। वनवास के १४ वर्ष अब समाप्त हो चुके थे। रावण सीता सहित अयोध्या लौट आए और वहां सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

पौरव वंश—कोशल के इक्ष्वाकु वंश के समान हस्तिनापुर का पौरव वंश भी बहुत प्रसिद्ध है इस वंश में अनेक राजा बड़े प्रतापी

हुए हैं। पौरव वंश के राजा वसु ने पूर्व में मगध और पश्चिम में सरस्वती नदी तक अपनी शक्ति का विस्तार किया था। आगे चल कर इसी वंश में शान्तनु नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ। जिस के दो पुत्र थे, पाण्डु और धृतराष्ट्र। पाण्डु के लड़के पाण्डव और धृतराष्ट्र के लड़के कौरव कहाए। पाण्डव पांच थे—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। कौरव संख्या में १०० थे। पाण्डवों और कौरवों में बहुत द्वेष था। पौरव राज्य का स्वामी कौन बने, इस विषय पर उन में लड़ाई चल रही थी। यद्यपि पाण्डव लोग अपने को राज्य का अधिकारी समझते थे, पर उन्हें एक छोटा-सा इलाका ही शासन के लिए दिया गया। वे इस से भी सन्तुष्ट थे और उन्हों ने इसे ही उन्नत कर एक शक्तिशाली राज्य बना दिया। उन्होंने जंगल को साफ़ कर इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया। वे अन्य राज्यों को जीत कर अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। मगध के राजा जरासन्ध को उन्होंने मार डाला और दिग्विजय करनेका निश्चय किया। चारों दिशाओं के राजाओं से अपनी अधीनता स्वीकृत करवा कर उन्हों ने राजसूय यज्ञ भी किया। पाण्डवों के इस उत्कर्ष को कौरव लोग नहीं सह सके। कौरवों में सब से बड़े भाई का नाम दुर्योधन था। वह पाण्डवों से बड़ी ईर्ष्या रखता था। उसने एक चाल चली। पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए निमन्त्रण दिया गया। उन दिनों जुआ खेलने की चाल बहुत थी। पाण्डव लोग जुए में अपना सारा राज्य हार गए। उन्हें १२ वर्ष तक बनवास के लिए बाधित होना पड़ा। जंगल में उन्हों ने बहुत से कष्ट सहे। वनवास का काल समाप्त होने पर वे घर वापस लौटे और दुर्योधन से अपना राज्य वापस मांगा। पर दुर्योधन ने उत्तर दिया कि युद्ध के बिना मैं सुई के छेद के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा।

लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि कौरवों और पांडवों में समझौता हो जाय, पर सब प्रयत्न निष्फल हो गए और युद्ध के सिवा कोई चारा नहीं रहा।

महाभारत का युद्ध—कौरवों और पाण्डवों का यह युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ा गया। इस में भारतवर्ष के प्रायः सभी राजा शामिल हुए थे। मत्स्य, चेदी, काशी, दक्षिण पंचाल, मगध आदि के राजाओं ने पाण्डवों को सहायता दी। पंजाब और उत्तरीय भारत के प्रायः अन्य सभी राज्य कौरवों के पक्ष में थे। यह युद्ध १८ दिनों तक निरन्तर लड़ा गया और अन्त में इसमें पाण्डवों की विजय हुई। दुर्योधन आदि सभी कौरव बन्धु इसमें मारे गये। महाभारत के इस महायुद्ध में भारत के सैकड़ों राजा और लाखों सैनिक काम आये। भारतीय इतिहास में यह युद्ध प्रसिद्ध है। 'महाभारत' नाम से संस्कृत का एक बड़ा भारी ग्रन्थ है, जिसमें कौरवों और पाण्वों की इसी लड़ाई का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है।

श्रीकृष्ण—महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के प्रधान सहायक श्रीकृष्ण थे। ये किसी राज्य के वंशानुगत राजा नहीं थे। मथुरा के पास उस समय एक गणराज्य था, जिसमें अन्धकवृष्णि लोगों का स्वतन्त्र शासन था। श्रीकृष्ण इसी राज्य के मुखिया थे। मगध के राजा जरासन्ध ने इस गण राज्य को नष्ट करने का बहुत प्रयत्न किया। उसने १८ बार इस पर चढ़ाई की। आखिर वह सफल हुआ और अन्धकवृष्णि मथुरा से बहुत दूर द्वारिका में जा बसे। तब से श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मारने का संकल्प किया और इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों की सहायता से वे अपने मनोरथ को पूर्ण कर सके। पाण्डवों और श्रीकृष्ण की बड़ी मित्रता थी। महा-

भारत के युद्ध में उनकी सफलता का मुख्य कारण श्रीकृष्ण की नीतिकुशलता ही थी। श्रीकृष्ण केवल महान् राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, वे बड़े विचारक, दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता भी थे। हिन्दू-धर्म की प्रसिद्ध पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता की रचना उन्होंने ही की थी। गीता एक अद्भुत ग्रन्थ है, सारा संसार उसकी महत्ता को स्वीकार करता है।

इक्ष्वाकु और पौरव वंश के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से वंश प्राचीन भारत में राज्य करते थे। कभी कोई सब का शिरोमणि बन जाता था, कभी कोई। इन पुराने राजवंशों के सम्बन्ध में कथायें तो बहुत-सी मिलती हैं, पर उन्हें यहां लिखने की आवश्यकता नहीं।

पांचवां अध्याय

भारत में नवीन धार्मिक सुधार

ईसा से छः सदी पूर्व भारतवर्ष में अनेक धार्मिक सुधारक उत्पन्न हुए। इसका कारण यह है कि भारत के पुराने धर्म में बहुत बिगाड़ आ चुका था। उस में सुधार की बहुत आवश्यकता थी। भारत के पुराने धर्म कर्मकाण्ड को बहुत महत्व देते थे। कर्म-काण्ड का मतलब यज्ञों से है। इन दिनों लोग समझते थे कि यज्ञों से मोक्ष प्राप्त हो जावेगा। यज्ञों में पशुओं की बलि बहुत बड़ी संख्या में दी जाती थी। अनेक यज्ञ ऐसे होते थे, जिन में सैकड़ों, हजारों मूक पशुओं की आहुति जाती थी। इस क सिवा, जात-पात के झगड़े उस समय बहुत शुरू हो गये थे। ब्राह्मण अपने को जन्म के कारण सब से ऊँचा मानते थे, वे अन्य जातियों को छोटा समझते थे तथा कुछ लोग अछूत भी समझे जाने लगे थे। इसी तरह अन्य भी बहुत-सी खराबियां भारत के धर्म में आगई थीं। इस के खिलाफ सुधार की आवाज उठनी स्वभाविक थी। परिणाम यह हुआ कि ईसा से ६ सदी पूर्व भारत में धार्मिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। अनेक सुधारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने भारतीय धर्म की बिगड़ी हुई अवस्था को अनुभव किया और उस में सुधार करने के लिये प्रयत्न किया। इन में महात्मा बुद्ध और महावीर सब से मुख्य हैं।

बुद्ध का जीवन—प्राचीन समय में गंगा के उत्तर और हिमालय की तलहटी में एक छोटा-सा राज्य था। जिस में शाक्य

जाति के क्षत्रिय निवास करते थे। इस की राजधानी कपिलवस्तु थी। वहां के शासक का नाम शुद्धोदन था। महात्मा बुद्ध इन्हीं शुद्धोदन के पुत्र थे। उनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ का बाल्यकाल बड़े सुख और ऐश्वर्य में व्यतीत हुआ। सरदी, गरमी और वर्षा इन तीनों ऋतुओं में उनके निवास के लिये अलग-अलग महल बने हुए थे। इन में ऋतु के अनुसार ऐश्वर्य तथा भोग-विलास के सब सामान एकत्र किये गये थे। कुमार सिद्धार्थ को शिक्षा भी बहुत उत्तम दी गई थी। राजा शुद्धोदन की इच्छा थी कि कुमार सिद्धार्थ शाक्य राज्य में खूब प्रतिष्ठित तथा उन्नत स्थान प्राप्त करे। इस लिये उस की शिक्षा तथा उन्नति पर उस ने विशेष ध्यान दिया था।

युवा होने पर सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा नाम की राज-कुमारी के साथ किया गया। विवाह के अनन्तर सिद्धार्थ का जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत होने लगा। सुख ऐश्वर्य की उन्हें कमी ही क्या थी? कुछ समय बाद उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उस नाम राहुल रखा गया।

एक वार की बात है कि कुमार सिद्धार्थ कपिलवस्तु का अव-लोकन करने के लिये निकले। उस दिन नगर को खूब सजाया गया था। कुमार सिद्धार्थ नगर की शोभा को देखता हुआ चला जा रहा था कि उसका ध्यान सड़क की एक ओर लेट कर अन्तिम श्वास लेते हुए एक बीमार की ओर गया। सारथी ने पूछने पर बताया कि यह एक बीमार है, जो कष्ट के कारण भूमि पर पड़ा हुआ तड़प रहा है और थोड़ी ही देर में इसका देहान्त हो जावेगा। यह घटना सभी आदमी देखते हैं, पर सिद्धार्थ पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इसके बाद उसे क्रमशः लाठी टेक

कर जाता हुआ एक बूढ़ा, समशान की ओर जाती हुई एक अरथी और एक शान्तमुख सन्यासी दिखाई दिए। पहले तीन दृश्यों को देख कर सिद्धार्थ का दबा हुआ वैराग्य एकदम प्रबल हो गया। उसे यह भोगविलासमय जीवन अत्यन्त तुच्छ तथा क्षणिक जान पड़ने लगा। सन्यासी को देख कर उसे उमंग आई कि मैं भी इसी प्रकार संसार से विरक्त हो जाऊँ।

सिद्धार्थ को वैरागी-सा होता देख कर शुद्धोदन को बड़ी चिन्ता हुई। उसने संसार के तीव्र विलासों द्वारा सिद्धार्थ का वैराग्य दबाने का प्रयत्न किया। पर कुमार सिद्धार्थ इन में नहीं फंसा। उसने संसार का परित्याग कर सन्यास ले लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। एक दिन अन्धेरी रात को कुमार सिद्धार्थ घर से निकल गया। शयनागार से बाहर आकर जब वह सदा के लिये अपने परिवार से विदा होने लगा, तो उसे अपने प्रिय अबोध बालक राहुल और सुन्दरी यशोधरा की स्मृति सताने लगी। वह पुनः अपने शयनागार में प्रविष्ट हुआ, यशोधरी सुख की नींद सो रही थी। राहुल माता की छाती से सटा सो रहा था। कुछ देर तक कुमार सिद्धार्थ इस अनुपम दृश्य को देखता रहा। उसके हृदय पर दुर्बलता प्रभाव करने लगी। पर अगले ही क्षण अपने हृदय के कोमल भावों को एक साथ परे ढकेल कर वह बाहर चला गया। गृहत्याग के समय उसकी आयु लगभग २९ बरस की थी।

इसके बाद लगभग सात बरस तक सिद्धार्थ ज्ञान और सत्य की खोज में इधर-उधर भटकता रहा। शुरू-शुरू में उसने दो तपस्वियों को अपना गुरू धारण किया। इन्होंने उससे मोक्ष-प्राप्ति के लिए खूब तपस्या करवाई। शरीर की सब क्रियाओं को बन्द

कर घोर तपस्या करना ही उनकी दृष्टि में मोक्ष का उपाय था। सिद्धार्थ ने घोर से घोर तपस्यायें की। शरीर को तरह-तरह से कष्ट दिये। पर इन साधनों द्वारा उन्हें आत्मिक शक्ति नहीं प्राप्त हुई। इसके बाद सिद्धार्थ ने वर्तमान बुद्ध गया के समीप एक बड़े पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगाई। इस वृक्ष के नीचे वह सात दिन और सात रात निरन्तर ध्यानमग्न दशा में बैठे रहे। यहां पर कुमार सिद्धार्थ को अपने हृदय में एक प्रकाश-सा जान पड़ा। उनकी आत्मा में एक दिव्यज्योति का अविर्भाव हुआ। उनकी तपस्या सफल हुई। वे अज्ञान से ज्ञान की दशा को प्राप्त हुए। उन्हें बोध हुआ, वे सिद्धार्थ से 'बुद्ध' बन गये।

बौद्धों की दृष्टि में इस पीपल के वृक्ष का बड़ा महत्त्व है। वे इसकी पूजा करते हैं। इस वृक्ष के नीचे समाधि लगा कर जो बोध कुमार सिद्धार्थ ने प्राप्त किया था, वही बौद्ध धर्म' कहाता है। कुमार सिद्धार्थ व महात्मा बुद्ध उसे 'आर्य मार्ग' व 'मध्यमार्ग' कहते थे। इसके बाद उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इसी 'आर्यमार्ग' का प्रचार करने में लगा दिया।

महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार काशी के समीप सारनाथ नामक स्थान से प्रारम्भ किया। इसी कारण यह स्थान भी बौद्धों में पवित्र तीर्थ स्थान माना जाता है। सारनाथ से बुद्ध उरुवेल और फिर राजगृह गये। जहां भी महात्मा बुद्ध पहुंचते, हजारों की संख्या में लोग उन के दर्शनों को आते और उन के उपदेशों को सुन कर लाभ उठाते। हजारों लोग उन के शिष्य बनने लगे। ३६ वर्ष की आयु में महात्मा बुद्ध ने प्रचार शुरू किया था। ८० साल की आयु में उन की मृत्यु हुई। बीच के ४४ वर्षों में वे निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते हुए धर्म का

प्रचार करते रहे। राजा, महाराजा, कुलीन, जमींदार, सेठ, साहूकार सभी उन के उपदेशों को सुनकर उनके अनुयायी बने। अन्त में ५४३ ई० पू० में कुशीनारा में उन की मृत्यु हुई।

बुद्ध की शिक्षायें—महात्मा बुद्ध किसी नवीन धर्म के प्रवर्तक नहीं थे। वे बार-बार लिखते हैं कि मैं फिर से प्राचीन धर्म की स्थापना करना चाहता हूँ। कर्म फल और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों पर उन्हें विश्वास था। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं विधाता है, वह अपने कर्मों और पुरुषार्थ से यथेष्ट उन्नति कर सकता है। जीवन को उन्नत तथा पवित्र बनाने से ही मनुष्य का कल्याण है। विधि-विधानों और कर्मकाण्ड से मनुष्य स्वर्ग व मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता, ये सब व्यर्थ और निरर्थक हैं। स्वर्ग और मोक्ष कोई पृथक् लोक नहीं हैं। मनुष्य चाहे तो इसी जीवन में मोक्ष व निर्वाण पद को प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में सूक्ष्म और जटिल दार्शनिक विचारों को अधिक स्थान नहीं दिया। इन विवादों की उन्हों ने उपेक्षा की। जीव का क्या स्वरूप है, सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है, व किसी अन्य पदार्थ से, अनादि वस्तुएँ कितनी हैं—इस प्रकार के विवादों से वे सदा बचते रहे। वे अपने उपदेशों में ऐसे मार्ग का प्रदर्शन करते थे, जिस से मनुष्य अपनी सच्ची उन्नति कर सके। जीवन को पवित्र बनाने के लए वे निम्नलिखित अष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश करते थे—

(१) सत्य चिन्तन (२) सत्य संकल्प (३) सत्य भाषण (४) सत्य आचरण (५) सत्य रहन-सहन (६) सत्य प्रयत्न (७) सत्य ध्यान और (८) सत्य आनन्द। बुद्ध का विश्वास था कि इस अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य अपना सच्चा कल्याण कर सकता है।

महात्मा बुद्ध जातपात के प्रबल विरोधी थे। वे जन्म के कारण किसी को ऊंच व किसी को नीच मानने के लिए तैयार न थे। उन की दृष्टि में कोई अछूत न था। उनके शिष्यों में ब्राह्मण और नीच कही जाने वाली जातियों के मनुष्य—एक समान स्थान रखते थे। पशुहिंसा के वे घोर विरोधी थे। अहिंसा उनका मुख्य सिद्धान्त था। वे न केवल यज्ञों में पशुहिंसा के विरुद्ध थे, अपितु जीवों को मारना व किसी प्रकार का कष्ट देना वे अनुचित समझते थे।

संघ की स्थापना—महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए संघ की स्थापना की। जो लोग सामान्य गृहस्थ-जीवन का त्याग कर धर्म प्रचार में ही अपने को खपा देना चाहते थे, वे भिक्षुव्रत लेकर संघ में शामिल होते थे। संघ का संगठन गणराज्यों के समान बकायदा गया था। प्रत्येक बात का निश्चय संघ में सम्मिलत भिक्षुओं के बहुमत से होता था। संघ के अधिवेशन में किस प्रकार कार्य हो, इसके लिए विस्तृत नियम बने हुए थे। बौद्ध धर्म के प्रचार में इस संघ संस्था से बहुत सहायता मिली। संघ के रूप में महात्मा बुद्ध ने एक ऐसी महान संस्था की नींव डाली, जिसका कार्य ही धर्म का प्रचार करना था। स्त्रियों के लिये भी महात्मा बुद्ध ने पृथक संघ बनाने की अनुमति दी। इस प्रकार भिक्षु और भिक्षुणि—दोनों के लिये पृथक्-पृथक् संघ बनाए गए थे।

बौद्धों की पहली महासभा—बुद्ध की मृत्यु २४३ ई० पू० में हुई। उन के मरने के कुछ ही समय बाद उनके शिष्य राजगृह में एकत्र हुए। उन्होंने प्रयत्न किया कि बुद्ध की शिक्षाओं को एकत्रित कर लेखबद्ध कर दिया जावे। इसी के अनुसार बौद्धों

के पवित्र साहित्य का विकास हुआ। बौद्धों का पवित्र साहित्य त्रिपिटक कहाता है, इसमें बहुत से ग्रन्थों का समावेश है। त्रिपिटक में मुख्यतया महात्मा बुद्ध की जीवनी और उनकी शिक्षायें संगृहीत हैं। राजगृह की पहली महासभा में बौद्ध भिक्षुओं ने इसी साहित्य का संग्रह प्रारम्भ किया था।

बौद्धों की दूसरी महासभा—बुद्ध की मृत्यु के १०० साल बाद बौद्धों की दूसरी महासभा वैशाली में हुई। इस बीच में बौद्धों में बहुत से मतभेद उठ खड़े हुए थे और उनमें अनेक नये सम्प्रदाय बन गये थे। उन्हीं को दूर करने के लिये यह महासभा की गई थी। बौद्धों को संगठित रखने तथा बुद्ध की शिक्षाओं में मिलावट न आने देने के लिये इन महासभाओं ने बड़ा कार्य किया।

बौद्ध धर्म का विस्तार—महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में उन की शिक्षाओं का प्रचार वर्तमान बिहार तथा पुर्वीय संयुक्तप्रान्त से आगे नहीं हुआ था। पर उनके शिष्य निरन्तर उनकी शिक्षाओं के प्रचार में कटिबद्ध रहे। अशोक के समय में बौद्ध धर्म का देश विदेश में प्रचार करने के लिये भारी उद्योग किया गया। इसका वृतान्त हम आगे चल कर लिखेंगे। पर यहां ध्यान रखना चाहिये कि बौद्ध भिक्षुओं की लगन तथा उत्साह का ही यह परिणाम था कि कुछ ही सदियों में बौद्ध धर्म न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण एशिया में फैल गया।

वर्धमानमहावीर—बौद्ध धर्म के साथ ही जैन धर्म का भी प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक वर्धमान महावीर थे। उत्तरीय बिहार में उस समय जो अनेक छोटे-छोटे गणराज्य विद्यमान थे, उनमें से एक का नाम था ज्ञातृकराज्य। इसकी राजधानी कुण्डग्राम थी। यहां के प्रमुख सरदार का नाम सिद्धार्थ था। वर्धमान इसी का

पुत्र था। वर्धमान का बाल्य जीवन राजकुमारों की तरह व्यतीत हुआ। वर्धमान को छोटी आयु से ही शिक्षा देनी प्रारम्भ हुई। शीघ्र ही वह सब विद्याओं और शिल्पों में निपुण हो गया। उचित आयु में उस का विवाह यशोदा नामक राजकुमारी से किया गया उनके एक कन्या भी उत्पन्न हुई। यद्यपि वर्धमान का प्रारम्भिक जीवन सम्पन्न गृहस्थ के समान व्यतीत हुआ, पर उसकी प्रवृत्ति सांसारिक जीवन की तरफ नहीं थी। वह 'प्रेय' मार्ग को छोड़ कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जाना चहाता था। जब वर्धमान ३० वर्ष की आयु के थे, तो उनके पिता की मृत्यु हुई। ज्ञातृक राज्य का सरदार अब वर्धमान का बड़ा भाई नन्दिवर्धन बना। वर्धमान की प्रवृत्ति पहले ही वैराग्य की तरफ थी। अब पिता की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग कर भिक्षु बनना निश्चित किया। अपने परिवार के लोगों से अनुमति ले उसने घर का परित्याग कर दिया। घर का परित्याग कर वर्धमान ने बड़ी भयंकर तपस्या प्रारम्भ की। एक जैन पुस्तक में लिखा है—"वर्धमान ने भिक्षु बनते समय जो कपड़े पहने हुए थे, वे १३ मास तक बिल्कुल जर्जरित हो गये, और फट कर स्वयं शरीर से उतर गये। उसके बाद उसने वस्त्रों को धारण ही नहीं किया।"

वह बारह वर्षों तक इसी प्रकार तपस्या करता रहा। अन्त में तेरहवें वर्ष में उसे अपनी तपस्या का फल प्राप्त हुआ। उसे पूर्ण-ज्ञान की उपलब्धि हुई। इसके बाद उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने ज्ञान के प्रचार में लगा दिया। एक स्थान से दूसरे पर घूम-घूम कर वह अपने धर्म का प्रचार करने लगे। अन्त में ७२ वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय वर्धमान महावीर राजगृह के समीप पावापुरी में विराजमान थे। यह स्थान इस

समय भी जैन लोगों का बड़ा तीर्थ है। उनकी मृत्यु ५२७ ई० पू० में हुई थी।

जैन धर्म की शिक्षाएं—जैन धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। इस उद्देश्य के लिए मनुष्य क्या प्रयत्न करे, इसके लिए साधारण गृहस्थों और भिक्षुओं (मुनियों) में भेद किया गया है। गृहस्थ के लिए पांच धर्मों का पालन सब से अधिक आवश्यक है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह् अर्थात् संचय को सीमित करना। मुनियों के लिए ये ही पांच धर्म हैं, पर उनके लिए वे अधिक कठोर रूप में पेश किए गए हैं, उदाहरण के लिए अहिंसा व्रत का पालन तो गृहस्थ के लिए भी आवश्यक है, परन्तु गृहस्थ पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। अतः उनके लिए 'स्थूल अहिंसा' का विधान किया गया है। पर मुनि के लिए ज़रूरी है कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म हिंसा से भी बचने का उद्योग करे।

बुद्ध और महावीर दोनों की शिक्षाओं में बहुत समता है। महावीर ने भी बुद्ध के समान अहिंसा पर बहुत ज़ोर दिया है। ईश्वर, जीव आदि के दार्शनिक सिद्धान्तों पर महावीर ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया। महावीर भी जातपांत के विरोधी थे। कर्मफल और आवागमन के सिद्धान्त को महावीर ने भी माना है। जीवन की पवित्रता और उन्नति पर भी महावीर ने बहुत ज़ोर दिया है। बुद्ध के समान महावीर ने भी अपने भिक्षु संघ की प्रथक् रूप से स्थापना की। महावीर के भिक्षुओं के लिए तपस्या के नियम बहुत कठोर रक्खे गए थे।

छटा अध्याय

बौद्ध काल का

राजनीतिक इतिहास

महात्मा बुद्ध के समय से भारत का इतिहास अधिक स्पष्ट तथा निश्चित होना शुरू होता है। इस काल में भारत में कोई एक राज्य नहीं था। भारत में बहुत-से छोटे-बड़े राज्य थे, जिन्हें महाजानपद कहा जाता है। बौद्ध पुस्तकों में सोलह महाजानपदों के नाम दिए गए हैं। पर सोलह ही नहीं, इस काल में बहुत अधिक राज्य भारत में विद्यमान थे। इन में से कुछ में राजा शासन करते थे और कुछ में जनता स्वयं शासन करती थी, अर्थात् कोई वंश क्रम से आया हुआ राजा न होता था। ऐसे राज्यों को गण राज्य कहते थे। बौद्ध काल में गण राज्यों की संख्या बहुत अधिक थी।

गण राज्य—बौद्ध काल के मुख्य गण राज्य निम्नलिखित थे—(१) वैशाली के लिच्छवि (२) मिथिला के विदेह (३) कपिलवस्तु के शाक्य और (४) पावा के मल्ल। ये गण राज्य उत्तरीय बिहार में गंगा के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित थे। इन में जनता स्वयं शासन करती थी। नागरिक लोग सन्थागार में एकत्रित होकर अपनी सभायें करते थे। सभाओं में जो कुछ निर्णय होता था, वही क्रिया में परिणत किया जाता था। इन्हें अपनी स्वाधीनता की बड़ी चिन्ता रहती थी। प्रत्येक नागरिक अपने को राजा समझता था। ये गणराज्य बड़े समृद्ध तथा

ऐश्वर्यशाली थे । अनेक राज्यों ने आपस में मिल कर संघ भी बनाये हुए थे। मिथिला के विदेह राज्य तथा वैशाली के लिच्छवि राज्य ने अन्य अनेक राज्यों के साथ मिल कर एक संघ बनाया हुआ था, जिसे वज्जिराज्य संघ कहते थे। यह संघ बहुत शक्ति-शाली था।

उत्तरीय बिहार के सिवा पंजाब में भी अनेक गणराज्य विद्यमान थे। पंजाब में क्षुद्रक ,मालव, शिवि, कठ आदि अनेक शक्तिशाली गणराज्य थे, जिन्हों ने सिकन्दर का मुकाबला बड़ी वीरता के साथ किया था । इन का हाल हम आगे चल कर लिखेंगे।

राजतन्त्र राज्य—बौद्धकाल के राजतन्त्र राज्यों में मगध, वत्स, अवन्ती और कोशल मुख्य हैं। मगध की राजधानी राज-गृह थी। बुद्ध के समय में यहां बिम्बिसार शासन कर रहा था, जो शशुनाग वंश का शक्तिशाली राजा था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी । बुद्ध के समय यहां का राजा उदयन था। अवन्ती की राजधानी उज्जैनी थी और यहां चण्डप्रद्योत शासन करता था। कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। बुद्ध के समय में इसका शासक अग्निदत्त प्रसेनजित् था। ये चारों राज्य अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये उद्योग कर रहे थे। जहां एक तरफ़ ये आपस में लड़ते थे, वहां दूसरी ओर ये अपने समीपवर्ती गणराज्यों पर भी हमला कर उन्हें जीतने की चिन्ता में रहते थे। अवन्ती और वत्स में बहुत देर तक लड़ाई जारी रही। कुछ समय तक वत्सराज उदयन प्रद्योत के पास कैद में भी रहा। इसी तरह मगध और कोशल भी आपस में लड़ रहे थे। इनकी आपस की लड़ाइयों का उल्लेख करने की यहां आवश्यकता नहीं। इतना लिख देना काफ़ी है कि ये चारों ही राज्य बहुत शक्तिशाली थे और उन्होंने

बहुत से छोटे राज्यों को जीत कर अपने अधीन किया हुआ था।

मगध की सफलता—पर इन चारों राज्यों के आपस के संघर्ष में मगध को सफलता हुई। मगध ने अन्य सब को जीत कर अपने अधीन किया और अपना विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया। महात्मा बुद्ध के समय में मगध का राजा बिम्बिसार था। राजगृह की स्थापना बिम्बिसार ने ही की थी। उससे पहले मगध की राजधानी गिरिव्रज थी। इन दोनों नगरों के भग्नावशेष इस समय पटना ज़िले में बिहार-शरीफ़ के समीप उपलब्ध होते हैं। बिम्बिसार के बाद मगध का राजा अजातशत्रु बना। यह बड़ा प्रतापी और साम्राज्यकारी था। इसकी कोशल के साथ बहुत-सी लड़ाइयां हुईं। अन्त में यह कोशल को परास्त करने में सफल हुआ। अजातशत्रु का सब से बड़ा कार्य गंगा के उत्तर में विद्यमान वज्जिराज्य संघ को नष्ट करना है। अपने चालाक मन्त्री वस्सकार की सहायता से इसने वज्जिसंघ में फूट डलवादी, और फिर उस पर हमला कर अपने अधीन कर लिया। अजातशत्रु के बाद मगध की राजगद्दी पर उदायी बैठा। पाटलीपुत्र की स्थापना इसी उदायी ने की। उदायी के समय से राजगृह के स्थान पर पाटलिपुत्र मगध की राजधानी बन गया। उदायी भी बड़ा पराक्रमी राजा था। इसके अवन्ती के साथ बहुत से युद्ध हुए थे। अन्त में इसी संघर्ष में उदायी मारा भी गया। उदायी के बाद जो राजा मगध के राजसिंहासन पर विराजमान हुए, उन सब का हाल यहां लिखने की आवश्यकता नहीं। इन विविध राजाओं के समय में मगध निरन्तर उन्नति कर रहा था। उत्तरीय भारत के अन्य सब राज्य धीरे-धीरे उसकी अधीनता में आते जाते थे।

मगध के इन राजाओं में महापद्म नन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने मगध की शक्ति को बहुत बढ़ाया। उसने वत्स,

अवन्ति, पांचाल आदि उत्तरीय भारत के विविध राज्यों को जीत कर अपने अधीन कर लिया। जिस समय सिकन्दर ने भारत पर हमला किया, उस समय यही महापद्मनन्द गंगा के पूर्व में शासन कर रहा था। इसी की शक्तिशाली सेना से डर कर सिकन्दर की सेनाओं ने व्यास नदी से आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था।

—:—:—

सातवां अध्याय

सिकन्दर का आक्रमण

ईसवी सन् से ३२६ वर्ष पूर्व सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। सिकन्दर मैसिडोनिया का राजा था। मैसिडोनिया का राज्य यूरोप में ग्रीस के उत्तर में था। सिकन्दर का पिता फ़िलिप बहुत बड़ा विजेता था। उसने ग्रीस के विविध राज्यों को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। सिकन्दर ने अपने पिता द्वारा शुरू की गई विजयों को जारी रखा और शीघ्र ही एशियामाइनर, मिश्र तथा पर्शियन साम्राज्य को जीत लिया। इन विजयों से उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई। एक लाख से ऊपर चुने हुए सिपाहियों को साथ लेकर उसने हिन्दुकुश पर्वत को पार कर भारत में प्रवेश किया। हिन्दुकुश के पूर्वीय प्रदेश में, जिसे आजकल अफ़गानिस्तान कहते हैं, उस समय भी अनेक शूरवीर जातियां निवास करती थीं। इन के साथ सिकन्दर के घमासान युद्ध हुए। नौ महीने तक निरन्तर युद्धों के बाद सिकन्दर इन्हें परास्त करने में समर्थ हुआ।

पंजाब में प्रवेश—उस समय पंजाब में किसी एक राजा का राज्य नहीं था। बहुत से छोटे-छोटे राज्य इस प्रदेश में विद्यमान थे। कुछ में राजाओं का राज्य था, तो दूसरों में जनता स्वयं शासन करती थी। ऐसे राज्यों को गणराज्य कहते थे। पंजाब के ये विविध राज्य एक दूसरे को परास्त कर साम्राज्य-विस्तार के प्रयत्न में लगे हुए थे। विशेषतया, तक्षशिला के राजा

आम्भी और जेहलम के राजा पोरस में देर से संघर्ष चला आता था। इसी का परिणाम हुआ कि जब सिकन्दर ने अटक से सोलह मील उत्तर में. उद्भाण्डपुर नामक स्थान से सिन्ध नदी को पार कर पंजाब में प्रवेश किया, तो तक्षशिला के राजा आम्भी ने उसकी सहायता की। अपने पड़ौसी राजा पोरस को परास्त करने के लिये ही आम्भी इस प्रकार सिकन्दर की सहायता कर रहा था। उसने बड़ी धूमधाम से सिकन्दर का स्वागत किया और अनेक अधीनता सूचक उपहार भेंट किये।

पोरस से युद्ध—आम्भी की सहायता से उत्साहित होकर सिकन्दर ने जेहलम के पार के राजा पोरस को स्वयं अधीनता स्वीकार करने तथा उपहार भेंट करने के लिये सन्देश भेजा। पोरस ने उत्तर में कहला भेजा कि "मैं जेहलम के किनारे उपहार से नहीं, प्रत्युत सेना से तुम्हारा स्वागत करने के लिये चल पड़ा हूँ।" पोरस मध्य पंजाब का शक्तिशाली राजा था, उसने अपनी भारी सेना को साथ लेकर प्रस्थान किया और जेहलम के किनारे मोरचा लगा दिया। सामने पोरस की बलशाली सेना को देख कर सिकन्दर ने नीति से काम लिया। एक रात जब घोर अन्धकार छाया हुआ था, वर्षा हो रही थी, जेहलम में बाढ़ भी आ रही थी, सिकन्दर ने इन विघ्न बाधाओं की कुछ भी परवाह न कर अपने कैम्प से सोलह मील उत्तर की तरफ़ एक मोड़ के स्थान से जेहलम को पार कर लिया। जब पोरस को शत्रु के नदी पार करने का समाचार मिला, तो उसने अपने पुत्र की अधीनता में दो हज़ार सैनिकों को सिकन्दर के मार्ग में बाधा डालने के लिये भेजा। पर यह छोटी-सी सेना सिकन्दर को कैसे रोक सकती थी? इस बीच में पोरस भी अपनी विशाल सेना के साथ सिकन्दर का मुकाबला करने के लिये चल पड़ा

था। दोनों ओर से भयंकर लड़ाई लड़ी गई। पर अन्त में सिकन्दर की विजय हुई। पोरस कैद हो गया, जिस समय उसे सिकन्दर के सम्मुख पेश किया गया, तो सिकन्दर ने उस से पूछा—'क्षत्रिय! तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव किया जावे?' पोरस ने उत्तर दिया—'जैसे राजा लोग राजाओं के साथ किया करते हैं।' इस उत्तर से सिकन्दर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पोरस की महत्ता का अनुमान किया, और पराजित राज्य का शासक पोरस को ही नियत कर दिया। पोरस को परास्त करने की प्रसन्नता में सिकन्दर ने दो नगरों की स्थापना की, एक उस स्थान पर जहां लड़ाई हुई थी, और दूसरा वहां, जहां से उसने जेहलम को पार किया था।

व्यास नदी तक विजय—पोरस को परास्त कर सिकन्दर पूर्व की तरफ़ बढ़ा। इस प्रदेश में उस समय अनेक गणराज्य विद्यमान थे, जिनमें ग्लौचुकायन, कठ और अरिष्ट नाम के राज्य मुख्य हैं। इनमें कोई वंशक्रमानुगत राजा न होता था। लोग अपना शासन स्वयं करते थे। ग्रीक ऐतिहासिकों ने इनकी शासन-विधि की बहुत प्रशंसा की है। इनमें निवास करने वाली स्वाधीन जातियां यह कदापि सहन नहीं कर सकती थीं कि सिकन्दर उनकी देर से चली आती हुई स्वतन्त्रता को नष्ट कर दे। उन्होंने बड़ी वीरता के साथ उसका मुकाबला किया। पर सिकन्दर की विश्वविजयिनी सेनाओं को ये छोटे-छोटे राज्य रोक नहीं सके। धीरे-धीरे विजय करता हुआ सिकन्दर व्यास नदी तक पहुंच गया। पर इसके आगे बढ़ने से उसके सैनिकों ने इन्कार कर दिया। सिकन्दर ने अनेक प्रकार से सेना को जोश दिलाने का प्रयत्न किया। पर वे इतने थक चुके थे कि किसी भी प्रकार आगे बढ़ने के लिए तैयार न हुए। सिकन्दर की सेनाएं विद्रोह तक करने के लिये तैयार हो गईं। अन्त में उसने वापस लौटने का ही निश्चय किया।

व्यास नदी के तट पर अपने स्मारक बनवा कर तथा अपने इष्ट देवताओं को संतुष्ट करने के लिए विविध प्रकार की पूजायें कर उसने जेहलम नदी की तरफ़ वापस लौटना प्रारम्भ किया।

वापसी; और गणराज्यों से युद्ध——बिना किसी अड़चन के सिकन्दर जेहलम तक वापस लौट आया। वहां उसने बड़ा भारी दरबार लिया। इस दरबार में पोरस को व्यास से लेकर जेहलम तक के प्रदेश का क्षत्रप (प्रान्तीय शासक) नियत किया। जेहलम से सिन्ध तक के प्रदेश का क्षत्रप आम्भी को बनाया गया। सिन्ध से हिन्दुकुश पर्वत तक का क्षत्रप फिलिप्पस नामक सेनापति नियत हुआ। इस प्रकार अपने नये जीते हुए प्रदेशों का प्रबन्ध कर सिकन्दर ने लौटना प्रारम्भ किया। पर उसने लौटने के लिये एक नए मार्ग का अनुसरण किया। जेहलम नदी में दो हज़ार नौकाओं और जहाज़ों को एकत्रित कर सिकन्दर ने एक बड़ा बेड़ा तैयार कराया। यह बेड़ा नदी के बीच में जा रहा था और दोनों तरफ़ सिकन्दर की विशाल सेना चल रही थी। इस समय पंजाब की नदियों के मध्यवर्ती प्रदेशों में अनेक शक्तिशाली गणराज विद्यमान थे। इनमें शिवि (चनाब और रावी के बीच में), क्षुद्रक (रावी और व्यास के बीच में) और मालव (रावी के दोनों तरफ़) सब से मुख्य हैं। ये राज्य बहुत शक्तिशाली तथा शूरवीर थे। इन्होंने डट कर सिकन्दर का मुकाबला किया। इनसे युद्ध करते समय अनेक बार सिकन्दर की अपनी जान भी जोखम में पड़ गई थी। सिकन्दर इन्हें पूर्णतया नष्ट भी नहीं कर सका, उसे इनके साथ सन्धि करने के लिये बाधित होना पड़ा। इन गणराज्यों से सन्धि-विग्रह करता हुआ सिकन्दर का जहाज़ी बेड़ा अन्त में समुद्रतट पर पहुंच गया। वहां उसने अपनी सेना के दो विभाग कर दिए। न्यार्कस नामक सेनापति को जलमार्ग

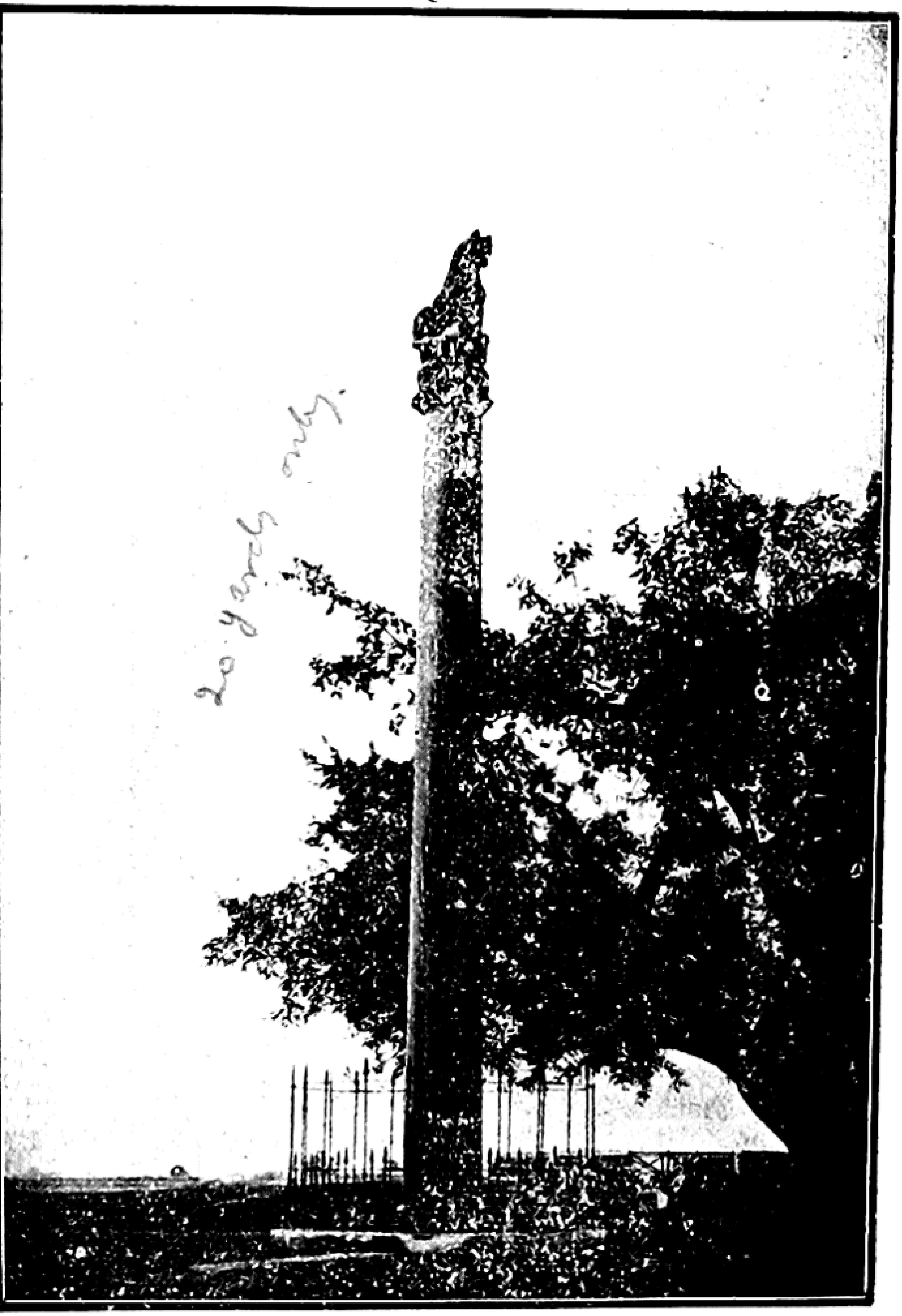
द्वारा पर्शिया पहुंचने की आज्ञा दी, और सिकन्दर स्वयं समुद्र तट के साथ-साथ मराकान होता हुआ पर्शिया की राजधानी सूसा की तरफ़ चल पड़ा।

ईसवी सन से ३२३ वर्ष पूर्व बैबिलोन में सिकन्दर की मृत्यु हुई। मरने के समय उसकी आयु केवल ३३ वर्ष की थी।

सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव——सिकन्दर का साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद क़ायम नहीं रह सका। उसके सेनापति राज्य के लिए आपस में लड़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि मैसिडोन का यह विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। भारत के जो प्रदेश उस के अधीन हुए थे, वे भी शीघ्र ही स्वतन्त्र हो गए। सिकन्दर के आक्रमण का कोई स्थिर प्रभाव यहां पर नहीं रहा। उस ने भारत के बहुत थोड़े से प्रदेश को ही जीता था। भारत के अधिकांश भाग पर उस का किसी भी प्रकार का असर नहीं हुआ। जो प्रदेश जीते भी गए थे, वे भी तीन-चार साल से अधिक समय तक उस की अधीनता में नहीं रहे। इस कारण इस देश की शासन-विधि, सभ्यता, धर्म व रहन-सहन आदि पर उस का कोई महत्त्व-पूर्ण प्रभाव नहीं हुआ। पर इस में सन्देह नहीं कि इस आक्रमण से पंजाब के गण राज्यों को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। पंजाब के विविध छोटे-छोटे राज्यों के स्थान पर एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने के लिए सिकन्दर मैदान तैयार कर गया।



सिकन्दर [५८



अशोक की लाट (लौरीय नन्दनगढ़)

आठवां अध्याय

मौर्य साम्राज्य

जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, उस समय गंगा नदी के पार पूर्व में एक शक्तिशाली साम्राज्य विद्यमान था, जिसे मगध साम्राज्य कहते थे। इस की राजधानी पाटलीपुत्र थी। मगध के राजाओं ने धीरे-धीरे उत्तरीय भारत के बहुत से भाग को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। सिकन्दर के आक्रमण काल में इस साम्राज्य पर महापद्मनन्द का शासन था। सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद इस साम्राज्य में एक भारी क्रान्ति हुई, जिस से नन्द मारा गया और चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के विशाल साम्राज्य का स्वामी बन गया।

चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक जीवन—चन्द्रगुप्त कौन था, इस विषय में अनेक मत हैं। कुछ लोग इसे महापद्मनन्द का ही मुरा नाम की दासी से उत्पन्न हुआ पुत्र मानते हैं। पर यह ठीक नहीं है। मौर्य नाम की एक जाति थी, जिस का पहले अपना स्वतन्त्र राज्य था। मगध के राजाओं ने उसे जीत लिया था। चन्द्रगुप्त इसी मौर्य जाति का राजकुमार था। उस की कुमारावस्था तक्षशिला में चाणक्य नाम के प्रसिद्ध आचार्य से विद्या पढ़ने में व्यतीत हुई थी। तक्षशिला उस समय भारत का बड़ा भारी विश्वविद्यालय था। और चाणक्य अपने समय में राजनीति का सब से बड़ा पण्डित माना जाता था। जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, तब चन्द्रगुप्त तक्षशिला में ही था। उसने सिकन्दर

से भेंट भी की थी। सिकन्दर की मृत्यु के बाद जब उसके साम्राज्य में झगड़े शुरू हो गए तो भारत में भी विद्रोह प्रारम्भ हुआ। पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी भारत की विविध जातियां सिकन्दर की अधीनता से मुक्त होने के लिए परस्पर संघर्ष करने लगीं। चन्द्रगुप्त इस विद्रोह का नेता बना। वह शुरू से ही अत्यन्त महात्वाकांक्षी था। आचार्य चाणक्य की सहायता स उसने भारत से मैसिडोनियन शासन का अन्त कर अपनी शक्ति का सूत्रपात किया। धीरे-धीरे वे सब राज्य, जिन्हें सिकन्दर ने अपने अधीन किया था, चन्द्रगुप्त के अधीन हो गए। इन की सहायता से चन्द्रगुप्त ने मगध पर आक्रमण किया। चाणक्य की कुटिल नीति और पश्चिम की सेनाओं ने मिल कर नन्द का पतन किया और चन्द्रगुप्त मौर्य मगध का साम्राट बना।

मगध को जीत कर ही चन्द्रगुप्त ने अपनी विजयों को समाप्त नहीं कर दिया। उसने हिमालय से ले कर विन्धाचल तक और बंगाल की खाड़ी से ले कर हिन्दूकुश पर्वत तक सम्पूर्ण उत्तरीय भारत को जीत कर अपने अधीन किया। इसके लिए चन्द्रगुप्त को जो लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, उनका वृत्तान्त वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होता।

सैल्युकस का आक्रमण—सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य के सम्बन्ध में झगड़े शुरू हो गए थे। उसके एशियाई प्रदेशों को प्राप्त करने के लिए दो सेनापतियों में युद्ध चल रहा था। इनके नाम हैं, सैल्युकस और एण्टिगोनस। नौ साल तक सिकन्दर के ये दोनों सेनापति आपस में लड़ते रहे। पर अन्त में सैल्युकस की विजय हुई और ३१२ ई० पू० में बैबिलोन में उसका बड़े समारोह के साथ राज्यभिषेक हुआ। सैल्युकस सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया का राजा था। पूर्व में उसकी सीमा भारत

से लगती थी। अतः सैल्युकस के हृदय में यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि मैं पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारत में फिर से ग्रीक राज्य क्यों न कायम करू। इसी इच्छा से उसने ३०५ ई० पू० में भारत पर आक्रमण किया। पर इस समय भारत में चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में एक संगठित तथा शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। चन्द्रगुप्त और सैल्युकस में भारी युद्ध हुआ। इसमें सैल्युकस की पराजय हुई। अन्त में उसे चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं—

(१) सैल्युकस निम्नलिखित प्रदेश चन्द्रगुप्त को दे—पेरोपनिसडेई (काबुल), एरिआ (हिरात) और आर्कोशिया (कान्धार)।

(२) चन्द्रगुप्त सैल्युकस को ५०० हाथी दे।

(३) सन्धि को स्थिर रखने के लिए सैल्युकस की अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ कर दे।

इस सन्धि द्वारा चन्गुप्त के साम्राज्य की सीमा हिन्दूकुश पर्वतमाला बन गई। इस सीमा के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक ने लिखा है—'इस सन्धि द्वारा चन्द्रगुप्त ने भारत की वह "वैज्ञानिक सीमा" प्राप्त कर ली थी, जिसके लिए आज उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ में आहें भरते हैं।'

मैगस्थनीज़—३०३ ई० पू० में यह सन्धि हुई। सन्धि के बाद ही सैल्यूकस नें अपने कर्मचारियों में से मैगस्थनीज को राजदूत बना कर चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा। मैगस्थनीज चिरकाल तक साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र में रहा। उस ने भारत में जो कुछ देखा, उसका मनोरंजक वृत्तान्त लिखा है। यद्यपि उसका यात्रा विवरण इस समय नष्ट हो चुका है, तथापि उस के जो थोड़े-बहुत अंश उपलब्ध होते हैं, उन से ही हम चन्द्रगुप्त कालीन

भारत के सम्बन्ध में बहुत-सी मनोरंजक तथा उपयोगी बातें जान सकते हैं।

चाणक्य और उनका अर्थशास्त्र—आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त के पुरोहित और प्रधान मन्त्री थे। नन्दवंश के विनाश तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना का अधिकांश श्रेय उन्हीं को है। वे जहां एक ओर धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और न्यायशास्त्र के पारंगत विद्वान थे, वहां दूसरी ओर वे महान् साम्राज्य निर्माता तथा राजनीतिज्ञ भी थे। उन का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। उन का बनाया हुआ अर्थशास्त्र मौर्यकाल की दशा को जानने के लिए बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। हम मैगस्थनीज़ के यात्राविवरण तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र से चन्द्रगुप्त कालीन भारत के सम्बन्ध में कुछ बातें यहां लिखते हैं।

सेना और उसका प्रबन्ध—चन्द्रगुप्त की सेना में छः लाख प्यादे, तीस हज़ार घुड़सवार और नौ हज़ार हाथी थे। रथों की संख्या आठ हज़ार से अधिक थी। सेना का प्रबन्ध करने के लिये ६ उपसमितियां होती थ । चार उपसमितियां पैदल, अश्वारोही, हस्ति और रथ सेनाओं का प्रबन्ध करती थीं। पांचवीं उपसमिति माल ढोने तथा सैन्य सामग्री को पहुँचाने का काम करती थी। छटी उपसमिति के अधीन जलसेना का कार्य होता था। जलसेना मौर्य काल में अच्छी उन्नति कर चुकी थी।

राजधानी और उसका शासन—मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। यह नगरी ६ मील लम्बी और १॥ मील चौड़ी थी। इसके चारों ओर एक ऊँचा परकोटा था, जो खाई से घिरा हुआ था। इस परकोटे में ६४ दरवाज़े और ५७० बुर्ज थे। परकोटे के चारों ओर जो खाई थी, उसकी चौड़ाई ६०० फ़ीट थी। पाटलिपुत्र का शासन करने के लिए एक नगर

सभा थी, जिसके सदस्यों की संख्या ३० होती थी। ये ६ उपसमितियों द्वारा अपना कार्य करते थे। उपसमितियों के काम निम्नलिखित होते थे—(१) पहली उपसमिति शिल्प तथा व्यवसाय का निरीक्षण करती थी। (२) दूसरी उपसमिति विदेशियों पर देखभाल रखती थी और उनके यथायोग्य सत्कार का प्रबन्ध करती थी। (३) तीसरी उपसमिति का कार्य मर्दुमशुमारी करना होता था। (४) चौथी उपसमिति क्रय-विक्रय के नियमों का निर्धारण करती थी। (५) पांचवी उपसमिति व्यापार का निरीक्षण करती थी और (६) छटी उपसमिति का कार्य टैक्स इकट्ठा करना होता था।

तक्षशिला, उज्जैनी आदि अन्य बड़े नगरों का शासन भी उस समय इसी ढंग से होता था।

देश का शासन——सम्पूर्ण साम्राज्य का शासन साम्राट् के अधीन होता था। पर वह अकेला अपनी इच्छा से शासन नहीं करता था। उसकी सहायता के लिए एक 'मन्त्रि परिषद्' होती थी। राजा प्रायः इस मन्त्रि परिषद् की सलाह से ही कार्य करता था। शासन के भिन्न-भिन्न विभाग उस समय अच्छी तरह संगठित थे। कुल मिला कर शासन के अठारह विभाग होते थे। देहातों में उनका शासन करने के लिये पंचायतें भी उस समय विद्यमान थीं।

सिंचाई का प्रबन्ध——सिंचाई का उस समय बड़ा अच्छा प्रबन्ध था। इसके लिये नदी काट कर नहरें बनाई जाती थीं। तालावों तथा झीलों से भी सिंचाई के लिये पानी लिया जाता था। सिंचाई से सरकार को आमदनी भी बहुत होती थी। नहरों आदि के प्रयोग के लिये सरकार को कर देना पड़ता था।

चिकित्सालयों का प्रबन्ध——मौर्यकाल में सरकार की तरफ़

से मनुष्यों तथा पशुओं की चिकित्सा के लिये चिकित्सालय भी खुलवाए जाते थे। इनमें चिकित्सक लोग विविध प्रकार की दवाइयों तथा यन्त्र, अस्त्र आदि को हमेशा तैयार रखते थे। जनता की चिकित्सा इनमें मुफ्त की जाती थी।

सामाजिक दशा—मौर्यकाल में तलाक की प्रथा प्रचलित थी। पुरुष और स्त्री दोनों तालाक कर सकते थे। स्त्रियों के पुनर्विवाह की प्रथा भी उस समय थी। केवल विधवा होने की दशा में ही नहीं, अपितु पति के चिरकाल के लिये विदेश में चले जाने पर तथा इसी प्रकार की अन्य दशाओं में स्त्री पुनर्विवाह कर सकती थी। उस समय में शराब पी तो जाती थी, पर मर्यादा के साथ। शराब को बनाना तथा बेचना राज्य के अधीन था। शराब निश्चित स्थान पर ही पी जा सकती थी। उसे घर पर ले जाने में बहुत रुकावटें थीं।

खानपान तथा रस्म—मैगस्थनीज़ ने लिखा है कि जब भारतवासी खाने बैठते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति के सामने मेज़ रखी जाती है, जो तिपाई की शकल की होती है। वे सब से पहले चावल खाते हैं और फिर अन्य पकान्न। भारतीय लोग बारीकी तथा नफ़ासात के प्रेमी होते हैं। उनके वस्त्रों पर सोने का काम किया रहता है। वे लोग अत्यन्त सुन्दर मलमल के बने हुए फूलदार कपड़े पहनते हैं। वे सौन्दर्य का बड़ा ध्यान रखते हैं, और अपने स्वरूप को संवारने में कोई उपाय उठा नहीं रखते।

व्यापार—मौर्य काल में व्यापार बहुत उन्नत था। व्यापारी लोग स्थल तथा जाल के मार्गों से दूर-दूर देशों के साथ व्यापार करते थे। महासमुद्र में जाने वाले बड़े-बड़े जहाज़ उस समय होते थे, जिन्हें 'प्रवहण' कहा जाता था। उस समय भारत का व्यापार चीन, लंका, मिश्र, पर्शिया तथा मैसीडोन तक से होता था। इन

सब देशों के साथ व्यापार का परिचय हमें विदेशी लेखकों के लेखों से भी मिलता है। स्थल मार्गों से व्यापार करने वाले व्यापारी काफ़िलों में सम्मिलित होकर व्यापार करते थे।

राजकीय कर—राज्य की मुख्य आमदनी भूमि से होती थी। भूमि से उपज का छटा भाग कर के रूप में लिया जाता था। इस के सिवा राज्य बहुत से व्यवसायों का संचालन करता था—राज्य को उनसे बहुत आमदनी होती थी। खानें राज्य के अधीन होती थीं। खानों से विविध धातुओं को निकाल कर उन्हें कारखानों में भेज दिया जाता था। वहां उन से विविध वस्तुएँ बनती थीं। समुद्र से मोती आदि भी राज्य की ओर से निकाले जाते थे। नमक का कारोबार भी राज्य के अधीन होता था। जो माल विदेश से भारत में आता था, या भारत से बाहर जाता था, उस पर भी राज्य कर लेता था।

इन सब बातों से यह भलीभांति ज्ञात हो जाता है कि चन्द्रगुप्त के समय का भारत बहुत उन्नत तथा समृद्ध था।

बिन्दुसार—सम्राट चन्द्रगुप्त ने ३२२ ई० पू० से २९८ ई० पू० तक राज्य किया। २९८ ई० पू० में चन्द्रगुप्त की मृत्यु हुई। इस के बाद चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने राज्य किया। चन्द्रगुप्त द्वारा साम्राज्य विस्तार का जो कार्य प्रारम्भ हुआ था, उसे बिन्दुसार ने जारी रखा। इस ने दक्षिणी भारत के सोलह राज्यों को जीत कर मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित किया। बिन्दुसार के समय में भी बहुत देर तक आचार्य चाणक्य ही प्रधान मन्त्री का कार्य करते रहे। विदेशों के साथ भी इस समय भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। सैल्यूकस के उत्ताधिकारी राजा एण्टियोकस सार्टर ने डायमेचस को अपना राजदूत बना कर पाटलिपुत्र भेजा था। इसी प्रकार मिश्र के राजा का दूत भी बिन्दुसार के दरबार में रहता था।

उसका नाम था, डायोनीसीयस।

अशोक का राज्यविस्तार—२७२ ई० पू० में बिन्दुसार की मृत्यु होने पर अशोक राजगद्दी पर बैठे। इससे पूर्व अशोक तक्षशिला और उज्जैनी में प्रान्तीय शासक रह चुके थे। इस कारण उन्हें शासन का भलीभांति अनुभव था, और वे मौर्य साम्राज्य की विश्वविजयिनी नीति से परिचित थे। इसी कारण स्वयं सम्राट् बन कर अशोक ने विजय यात्रा प्रारम्भ की। जिसे आजकल उड़ीसा कहते हैं, वह उस समय कलिंग नाम का एक स्वतन्त्र शक्तिशाली राज्य था। यह अभी मौर्य साम्राज्य के अधीन नहीं हुआ था। कलिंग की सेना में साठ हज़ार पदाति, एक हजार घुड़सवार और सात सौ हाथी थे। अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया और दोनों राज्यों में बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। इस युद्ध में कलिङ्ग के एक लाख आदमी मारे गये, डेढ़ लाख कैद हुए और इनसे कई गुना अधिक मनुष्य युद्ध के बाद आने वाली महामारी आदि से काल के ग्रास बने। इस प्रकार खून की नदी बहा कर अशोक कलिङ्ग को जीतने में समर्थ हुआ। जीते हुए राज्य के सुशासन के लिए अशोक ने विशेष ध्यान दिया। उसे एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और उसकी राजधानी तुषाली में प्रान्तीय शासक नियत किया गया। कलिङ्ग की विजय से सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पूर्णरूप से मौर्य साम्राज्य के अधीन हो गया। दक्षिणीय भारत, मांइसूर तक, पहले ही जीता जा चुका था। अब सुदूर दक्षिण के थोड़े से प्रदेश को छोड़ कर सारा भारत मौर्य साम्राज्य में आ गया।

नीति परिवर्तन—यदि अशोक चाहता, तो मगध की विश्वविजयिनी सेनाओं से न केवल सूदूर दक्षिण के थोड़े से प्रदेश को जीत कर अपने अधीन कर सकता था, अपितु अपनी सेनाओं

को लेकर बड़ी ही सुगमता से सिकन्दर के समान दिग्विजय के लिए निकल सकता था। पर कलिङ्ग के साथ युद्ध करते हुए उसके दिल में प्रश्न पैदा हुआ कि लाखों मनुष्यों के खून को इस तरह बहाने से लाभ क्या है? मनुष्य, मनुष्य से क्यों लड़ता है? जंगली जानवरों की तरह एक देश के लोग दूसरे देश के वासियों के साथ क्यों लड़ाई करते हैं? हथियारों से विजय करने के सिवा क्या दूसरों को जीतने का अन्य कोई उपाय नहीं है? सारे संसार के इतिहास में अशोक ही ऐसा साम्राट् हुआ है जिसके दिल में ये विचार उत्पन्न हुए और जिसने यह निर्णय किया कि शस्त्रों द्वारा दूसरों को जीतने के स्थान पर धर्म द्वारा दूसरों को विजय किया जाय। सचमुच यह एक नई प्रकार की विजय थी। और अशोक ने अपनी सारी शक्ति इसी धर्म विजय के लिये लगा दी।

धर्म विजय—अशोक का धर्म विजय से क्या मतलब था? अशोक अपनी सारी शक्ति इस बात के लिये लगा रहा था कि भारत और विदेशों में सच्चे धर्म की स्थापना हो। लोग धर्म के असली तत्त्वों का अनुसरण करें। वह स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था, पर धर्म विजय द्वारा वह जिस धर्म का प्रचार कर रहा था, वे सदाचार के ऐसे साधारण और सर्वसम्मत नियम थे, जिससे किसी भी सम्प्रदाय का विरोध नहीं हो सकता था। दया, दान, सत्य, मृदुता, माता पिता की सेवा, गुरुजनों की सेवा, पवित्रता, दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार और अहिंसा—ये बातें अशोक का 'धर्म' थीं। ये बातें मामूली हैं, कौन-सा ऐसा धर्म है जो इनका उपदेश न करे। सब धर्मों के असली तत्त्व भी यही हैं। पर लोग इन पर ध्यान नहीं देते। अशोक चाहता था कि लोग इन पर ध्यान दें, इन्हें समझें, और इन्हें क्रिया में

परिणत करें।

धर्मविजय की स्थापना के लिये अशोक ने इन उपायों का प्रयोग किया—

१—धर्म महामात्र नामक नये राजकर्मचारी नियत किये, जिनका कार्य ही विविध सम्प्रदायों के लोगों में धर्म के इस सन्देश को पहुँचाना था।

२—जनता के कल्याण के लिये अनेक कार्य किए। सड़कों पर मनुष्यों और पशुओं को छाया देने के लिए बरगद के पेड़ और आम की वाटिकायें लगवाईं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुएँ खुदवाए। जहां-तहां पियाऊ बैठाए। मार्गों पर यात्रियों के आराम के लिए धर्मशालाएं बनवाईं।

३—अशोन ने अपने राजकर्मचारियों को आदेश दिया कि शिकार के लिये यात्रा पर जाने के बजाय वे धर्मयात्रा किया करें। जिनमें सर्वसाधारण जनता को धर्म का सन्देश सुनाया जाय।

४—धार्मिक सहिष्णुता पर विशष ज़ोर दिया। लोगों को समझाया कि वे बिना कारण दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा न करें। वाणी को संयम में रखें और दूसरे सम्प्रदायों के केवल दोष देखने के स्थान पर उनके गुण देखना सीखें।

५—मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए चिकित्सालय खुलवाए, जहां सबकी मुफ्त चिकित्सा की जाती थी।

६—अपने धर्मसन्देश को जनता तक पहुंचाने के लिए महत्त्वपूर्ण स्थानों पर शिलालेख खुदवाए।

ये सब उपाय अशोक ने केवल अपने राज्य में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी किए। मैसिडोनिया, ग्रीस, सीरिया, मिश्र और साइरिनि आदि सुदूरवर्ती पश्चिमीय देशों तथा

पाण्ड्य, केरल और चोल आदि दक्षिणीय देशों में अशोक ने इन्हीं सब कार्यों को किया। मौर्य साम्राज्य की जो विशाल शक्ति इन देशों पर आक्रमण कर खून बहाने में लग सकती थी, वह इन लोकोपकारी कार्यों तथा धर्म के सन्देश को पहुंचाने में लगाई गई। परिणाम यह हुआ कि भारतीय धर्म, भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार देश-विदेश में होना शुरू हुआ। उस समय में अन्य देशों के राजा आपस में लड़ने झगड़ने तथा युद्ध करने में लगे थे। उन्हें जनता का कुछ भी ख्याल न था। अशोक के धर्म महामात्रों तथा अन्य कर्मचारियों ने वहां इस प्रकार लोकोपकारी कार्य करना तथा धर्म का सन्देश पहुंचाना प्रारम्भ किया, तो उसका लाभ बहुत अधिक हुआ। भारत की सभ्यता और धर्म का वहां प्रचार होना शुरू हुआ, और सच्चे अर्थों में वहां भारत की विजय होने लगी।

बौद्धों की तीसरी महासभा और बौद्ध धर्म का प्रचार—अशोक के समय में बौद्धों की तीसरी महासभा पाटलिपुत्र में हुई। अशोक इस समय तक बौद्ध धर्म को स्वीकार कर चुका था, अतः यह महासभा इसी की संरक्षा में हुई। इसका सभापति तिष्य उर्फ़ उपगुप्त नाम का एक प्रसिद्ध भिक्षु बना। इस महासभा में दो बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये गए। बौद्ध धर्म में इस समय तक बहुत से मतभेद तथा दलबन्दियां पैदा हो चुकी थीं। उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया गया। दूसरा यह कि बौद्ध धर्म को देश विदेश में फैलाने के लिए अनेक प्रचारक मण्डल (मिशन) बनाये गए। ये मिशन संख्या में नौ थे। हिमालय के पार सुदूरवर्ती उत्तरीय प्रदेशों और लंका, बर्मा आदि में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए इस समय में

बहुत से बौद्ध भिक्षु भारत से बाहर गए। अशोक के पुत्र कुमार महेन्द्र तथा कुमारी संघमित्रा ने राज्य के सब सुखों को लात मार कर बौद्धों के काषाय वस्त्रों को धारण किया और लंका की ओर धर्मप्रचार के लिए निकल पड़े। बौद्ध धर्म, जो आगे चल कर प्रायः सम्पूर्ण एशिया में फैल गया, उस के प्रचार के लिए महान प्रयत्न का प्रारम्भ इसी समय से हुआ।

अशोक के *शिलालेख*—धर्म का संदेश जनता तक पंहुचाने के लिए अशोक ने बहुत से शिलालेख खुदवाये थे। य शिलालेख सारे भारत में पाए जाते हैं। उत्तर पश्चिमीय सीमाप्रान्त में शाह बाजगढ़ी से (पेशावर से ४० मील उत्तर-पूर्व में) ले कर पूर्व में धौली (उड़ीसा के पुरी जिले में) तक और उत्तर में कालसी (हिमालय की उपत्यका में) से ले कर दक्षिण में सिद्ध-पुर (माइसूर में) तक ये शिलालेख पाए गए हैं। ये लेख बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खोदे गए हैं। केवल शिलाओं पर ही नहीं, बड़े-बड़े स्तम्भ स्थापित कर उन पर भी अशोक ने अपने सदेश खुदवाये थे। अशोक के स्तम्भ प्राचीन शिल्प और कला की उत्कृष्टता के अद्भुत नमूने हैं। अशोक के अनेक स्तम्भ ५० फीट के लगभग ऊँचे और १४०० मन के लगभग भारी हैं। ये एक ही विशालकाय पत्थर को तराश कर बनाये गए हैं। इन की गोलाई और चिकनाई को देख कर आश्चर्य होता है। सचमुच ये प्रस्तरस्तम्भ बहुत ही सुन्दर हैं। अशोक का एक स्तम्भ काशी के समीप सारनाथ में मिला है। उस के सिर पर सिंह की चार मूर्तियां बनाई गई हैं। सिंहों की ये मूर्तियां बहुत ही स्वाभाविक तथा सुन्दर हैं। मूर्ति निर्माण कला की दृष्टि से इन का बहुत बड़ा महत्त्व है। स्तम्भ तथा उस का शीर्ष भाग बलुए पत्थर का बना

हुआ है, पर उसके ऊपर जो वज्र लेप किया गया है, वह बहुत ही चिकना, चमकदार तथा सुन्दर है। अशोक को इमारतें बनाने का बड़ा शौक था। उस ने बहुत से स्तूपों, विहारों तथा भवनों का निर्माण कराया था। बौद्ध पुस्तकों में लिखा है कि उसने कुल मिला कर ८४ हज़ार इमारतें बनवाई थीं। वर्तमान समय में उसकी इमारतें नष्ट हो चुकी हैं, पर खुदाई से कहीं-कहीं उन के अवशेष मिले हैं। सारनाथ, सांची और पाटलिपुत्र आदि में कुछ ऐसी इमारतों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिन्हें अशोक के समय का बताया जाता है। ये अवशेष देखने में बहुत सुन्दर तथा कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

अशोक की महत्ता—न केवल भारत परन्तु सम्पूर्ण संसार के इतिहास में अशोक का बहुत ऊँचा स्थान है। वही एक ऐसा सम्राट हुआ है, जिस ने अपनी शक्ति को युद्धों और विजयों में न लगा कर मनुष्य जाति के असली कल्याण के लिए लगाया। दुनियां बड़े-बड़े विजेताओं और योद्धाओं का नाम भूल जायगी, पर अशोक का नाम सदा स्थिर रहेगा। बौद्ध धर्म में भी अशोक का स्थान बहुत बड़ा है। महात्मा बुद्ध के बाद उसी का नाम बौद्ध साहित्य में आता है। इसका कारण यह है कि उसकी नीति के कारण बौद्ध धर्म के फैलने में बहुत सहायता मिली।

सम्प्रति का शासन—अशोक की मृत्यु २३२ ई० पू० में हुई। उसके बाद कुणाल और दशरथ राजगद्दी पर बैठे। कुणाल अशोक का लड़का था और दशरथ पोता। पर इन दोनों के समय में राज्य का असली संचालन युवराज सम्प्रति के हाथ में रहा, जो कुणाल का लड़का और दशरथ का भाई था। दशरथ की मृत्यु

के बाद २१६ ई० पू० में सम्प्रति स्वयं सम्राट् बना। सम्प्रति जैन धर्म का अनुयायी था। इसने जैन धर्म के प्रचार के लिए बहुत उद्योग किया। उसने देश विदेश में जैन साधुओं को धर्म-प्रचार के लिए भेजा। सम्प्रति ने बहुत से लोकोपकारी कार्य भी किए। ग़रीबों को मुफ्त भोजन बांटने के लिए अनेक दानशालायें भी खुलवाईं।

मौर्य साम्राज्य का पतन—अशोक के बाद से ही मौर्य साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। काश्मीर, कलिङ्ग और आन्ध्र देश स्वतन्त्र हो गए थे। अब सम्प्रति के बाद से तो यह पतन और भी तेज़ी से शुरू हो गया। सम्प्रति का उत्तराधिकारी शालिशुक बहुत निकम्मा तथा अत्याचारी था। उसे अपने कर्तव्यों का ज़रा भी ध्यान न था। उसके समय में भारत पर ग्रीक लोगों के फिर हमले हुए। जहां एक तरफ़ भारत पर विदेशियों के आक्रमण इस समय शुरू हो रहे थे, वहां दूसरी तरफ़ मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत विविध राज्य स्वतन्त्र होने की कोशिश में लगे थे। परिणाम यह हुआ कि मौर्य साम्राज्य निरन्तर क्षीण होता गया। मौर्य वंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। उसे उसके शक्तिशाली सेनापति पुष्यमित्र ने १८४ ई० पू० में मार कर स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मौर्य वंश का अन्त हुआ।

नवां अध्याय

शुंग, काण्व और सातवाहन वंश

मौर्य वंश के साथ मगध के साम्राज्य का अन्त नहीं होगया। साम्राज्य जारी रहा, यद्यपि राजवंश बदल गया। जिस पुष्यमित्र ने मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मार कर राज्य प्राप्त कर लिया था, वह मौर्य साम्राज्य का सेनापति था। उसके साथ शुङ्ग वंश का प्रारम्भ होता है।

पुष्यमित्र का शासन—शुङ्ग पुष्यमित्र अच्छा शक्तिशाली राजा था। उस ने मगध के क्षीण होते हुए साम्राज्य में शक्ति का संचार किया। अनेक राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपनी अधीनता में लाया। पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था, जो दिग्विजय के पश्चात् किया जाता है। उस ने अश्वमेध के लिए जो घोड़ा छोड़ा था, वह उत्तरीय भारत में चक्कर काटता हुआ सिंध नदी तक जा पहुँचा था। वहां उसे किसी ग्रीक राजा ने पकड़ लिया। इस पर पुष्यमित्र के सेनापति कुमार वसुमित्र ने ग्रीक लोगों से युद्ध किया। ग्रीक परास्त हो गए और यज्ञीय घोड़े को सकुशल पाटलीपुत्र ले आया गया। इस अश्वमेध से सूचित होता है कि पुष्यमित्र का साम्राज्य अच्छा विस्तृत था। दक्षिण में नर्मदा नदी और पश्चिम में सिन्ध नदी अवश्य ही उस के साम्राज्य की सीमा थी। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ देश (बरार) को भी जीत कर अपने अधीन किया था।

कलिंगराज खारवेल से युद्ध—मौर्य साम्राज्य के पतन के समय में कलिङ्ग देश स्वतन्त्र होगया था। पुष्यमित्र के समय में वहां का राजा खारवेल था। यह खारवेल बहुत शक्तिशाली तथा महत्त्वाकांक्षी राजा था। इसने उत्तर में मगध और दक्षिण में आन्ध्र देश पर अनेक आक्रमण किए। पुष्यमित्र को इस ने कई बार परास्त किया। एक बार तो मगध की राजधानी तक भी पहुँच गया। पर अन्त में इसकी पराजय हुई और पुष्यमित्र के साम्राज्य को इसके आक्रमणों से विशेष हानि नहीं हुई।

पतंजलि—संस्कृत का प्रसिद्ध वैयाकरण पतंजलि पुष्यमित्र का ही समकालीन था। पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखा है, जिसे 'महाभाष्य' कहते हैं। पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ में पतंजली ही पुरोहित का कार्य कर रहा था।

अन्य शुंग राजा—पुष्यमित्र के बाद शुङ्गवंश के नौ अन्य राजाओं ने राज्य किया। पर इनके शासन की कोई बात प्रसिद्ध नहीं है। ७२ ई० पू० में शुङ्गवंश के अन्तिम राजा देवभूमि को उसके प्रधान मन्त्री वसुदेव ने मार कर स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया।

शुंग वंश के राजा—ये भागवत धर्म को मानने वाले थे। भागवत धर्म प्राचीन हिन्दु धर्म का ही एक सुधरा हुआ रूप था। ये लोग बौद्ध और जैन धर्मों के विरोधी थे। पुष्यमित्र का अश्वमेध यज्ञ करना तथा उसमें अश्व की बलि देना सूचित करता है कि ये राजा बौद्धों की प्रधान शिक्षा अहिंसा की कोई परवाह नहीं करते थे।

कण्व वंश—वसुदेव कण्व घराने का था। अतः उसके साथ कण्व वंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश में चार राजा हुए,

जिन्होंने कुल मिलाकर ४५ वर्ष (७२ ई० पू० से ३७ ई० पू० तक) राज्य किया। कण्ववंश का अन्तिम राजा सुशर्मा था। उस पर आन्ध्र देश के सातवाहन राजाओं ने आक्रमण किया और मगध के साम्राज्य को जीत कर अपने अधीन कर लिया।

आन्ध्रराज्य का उत्कर्ष—आन्ध्र भारतवर्ष की एक अत्यन्त प्राचीन जाति है। मौर्य साम्राज्य के विकास से पहले उनका अपना स्वतन्त्र राज्य था। मैगस्थनीज़ के अनुसार उनकी सेना में एक लाख पदाति, दो हज़ार घुड़सवार और एक हज़ार हाथी थे। पर मौर्य सम्राटों ने इस शक्तिशाली राज्य को जीत कर अपने अधीन कर लिया। अशोक के बाद जब मौर्य साम्राज्य का पतन शुरू हुआ, तो आन्ध्र राज्य स्वतन्त्र होगया। इसे स्वतन्त्र करने वाले वीर पुरुष का नाम सीमुक था। सीमुक सातवाहन घराने का था। इसी लिए उसके वंश को सातवाहन वंश कहते हैं। सीमुक के समय से आन्ध्र राज्य की शक्ति निरन्तर बढ़ती गई। धीरे-धीरे सारा दक्खिन उनके अधीन होगया। आन्ध्रराज्य की राजधानी प्रतिष्ठान नगरी थी। यह गोदावरी नदी के तट पर स्थित थी।

आन्ध्रों का यह राज्य बहुत शक्तिशाली था। ईस्वी सन से २७ वर्ष पूर्व आन्ध्र देश के राजा ने विन्ध्याचल पर्वतमाला को लांघ कर उत्तरीय भारत के मगध साम्राज्य पर आक्रमण किया। मगध में उस समय कण्व वंश का राजा सुशर्मा राज्य करता था। सुशर्मा परास्त हो गया, और मगध का साम्राज्य भी आन्ध्रों के अधीन होगया। इस विजय से आन्ध्र साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया। विन्ध्याचल के दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ आन्ध्रों का राज्य होगया। आन्ध्रों के इस शक्तिशाली साम्राज्य ने उन

विदेशी जातियों का बड़ी सफलता के साथ मुकाबला किया, जो उस समय भारत पर आक्रमण कर रही थीं और जिनका हाल हम अगले अध्याय में लिखेंगे।

ये आन्ध्र सम्राट् जहां बड़े शक्तिशाली थे, वहां साथ ही विद्या के प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। प्राकृत भाषा की इनकी संरक्षा में बड़ी उन्नति हुई। इनके अपने शिलालेख भी प्राकृति भाषा में लिखे गये हैं। आन्ध्र साम्राज्य में भारत के पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों तट अन्तर्गत थे। उनके समय में पूर्वीय तट के बन्दरगाहों का मलाया प्रायद्वीप और दक्षिणी चीन के साथ बड़ा व्यापार था। इसी प्रकार पश्चिमी तट के प्रसिद्ध बन्दरगाह भृगुकच्छपुर का रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार बहुत उन्नत था।

आन्ध्र साम्राज्य २२५ ईस्वी तक कायम रहा।

—:—:—

दसवां अध्याय

नवीन जातियों का भारत में प्रवेश

भारत के उत्तर पश्चिमीय मार्गों से अनेक जातियां समय-समय पर भारत में प्रवेश करती रही हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद जब मगध की शक्ति कमज़ोर पड़ी, तो अनेक जातियों ने भारत पर आक्रमण कर उत्तर पश्चिमीय भारत में अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। ये जातियां ग्रीक, पार्थियन, शक और कुशान हैं। इन में पहली दो जातियों के, हिन्दुकुश पर्वत से पश्चिम में अपने स्वतन्त्र राज्य विद्यमान थे। इन्हों ने साम्राज्य बढ़ाने की इच्छा से भारत में प्रवेश किया, और यहां अपने नये राज्यों की स्थापना की। दूसरी तरफ शक और कुशान ऐसी जातियां थीं, जिन के अपने कोई स्थिर राज्य न थे। अवस्थाओं से बाधित होकर इन्होंने भारत में प्रवेश किया, और यहीं आकर बस गए।

ग्रीक लोग--मौर्य साम्राज्य के शिथिल पड़ने पर ग्रीक लोगों ने फिर भारत पर आक्रमण शुरू किए। इस बार उन्हें सफलता हुई। अफ़गानिस्तान और पश्चिमी पंजाब के प्रदेश ग्रीक लोगों के अधिकार में चले गए। ग्रीक लोगों का कोई एक शक्तिशाली राज्य इन प्रदेशों में नहीं था। उनके विविध सरदार स्वतन्त्र रूप से भिन्न-भिन्न स्थानों पर राज्य करते थे। इन राजाओं में मीनान्दर का नाम सब से प्रसिद्ध है। उसकी राजधानी शाकल (सियाल-

कोट) थी। इस ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था। इसका बौद्ध नाम मिलिन्द है। बौद्ध साहित्य का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मिलिन्द पन्हो' है, जिसमें राजा मिलिन्द के बौद्ध धर्म सम्बन्धी प्रश्न और उनके उत्तर हैं। मीनान्दर के समान अन्य भी अनेक ग्रीक राजाओं ने भारतीय धर्मों को स्वीकार कर लिया था।

पार्थियन लोग—पार्थिया का राज्य हिन्दुकुश पर्वत के पश्चिम में पर्शिया में स्थित था। यहां के राजा मिथ्रेडेटस ने १३८ ई० पू० में भारत पर आक्रमण कर कुछ प्रदेशों को जीत लिया। उस के बाद अनेक पार्थियन राजे भी उत्तर-पश्चिमीय भारत के विविध प्रदेशों में राज्य करते रहे।

शक लोगों का प्रवेश—शक लोगों का असली निवास-स्थान मध्य एशिया में सीर (जाक्सर्टस) नदी के उत्तर में था। एक अन्य जाति के आक्रमणों से विवश हो कर उन्हों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और पार्थिया तथा ग्रीक लोगों के स्वतन्त्र राज्यों को नष्ट करते हुए विविध मार्गों से भारत में प्रवेश किया। भारत में उनके तीन राज्य स्थापित हुए। ये तक्षशिला, मथुरा और मालवा में थे। इन शक राज्यों में मालवा का राज्य सब से प्रसिद्ध है। इसका शासन तीन सदियों तक क़ायम रहा। इन्होंने काठियाड़ को भी जीत कर अपने अधीन कर लिया था। शकों के राजाओं को क्षत्रप कहा जाता है। मालवा के इन क्षत्रपों के आन्ध्र सम्राटों से निरन्तर युद्ध जारी रहे। शक लोग आन्ध्र साम्राज्य के बहुत से हिस्सों को जीत लेते, यदि आन्ध्रों में एक महान वीर उनका मुकाबला सफलता के साथ न करता। इस आन्ध्रवीर का नाम गौतमीपुत्र श्री सातकर्णी था। इसने १०६ ईस्वी में शकों को बुरी तरह परास्त किया।

शक लोगों ने शीघ्र ही भारत के धर्म, सभ्यता, संस्कृति और भाषा तक को स्वीकृत कर लिया। उनके शिलालेख शुद्ध संस्कृत भाषा में मिलते हैं। धर्म में उन्होंने भागवत व शैव धर्म को स्वीकार किया था।

कुशन लोगों का प्रवेश—कुशन जाति भी शक जाति के समान मध्य एशिया की रहने वाली थी। इन्हीं से धकेले जाकर शकों ने दक्षिण की तरफ़ प्रस्थान किया था। शकों के बाद से कुशन भी भारत की ओर आए और भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा हिन्दुकुश पर्वत के पूर्व में शासन करने वाले विविध ग्रीक, पार्थियन तथा शक राजाओं को जीत कर स्वयं वहां के राजा हो गये। कुशन लोगों का मुख्य नेता केडफिसस द्वितीय था, जिसने बनारस तक हमले किये थे। बनारस तक के प्रदेश को वह स्थिर रूप से अपने शासन में नहीं ला सका, पर हिन्दु-कुश के पश्चिम और पूर्व दोनों तरफ़ उसने विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

कनिष्क—कैडफिसस के बाद कनिष्क कुशन सम्राज्य का स्वामी बना। उसका राजगद्दी पर बैठने का काल १२० ईसवी है। कनिष्क बहुत प्रतापी राजा हुआ है। उसने कुशन साम्राज्य का विस्तार करने लिए बहुत से युद्ध किए। भारत से बाहर उसने पार्थिया, खोतान, यारकन्द और काशगर को जीत कर अपने अधीन किया। चीन के साथ भी उसके बहुत से युद्ध हुए। भारत में उसने काश्मीर को जीता और दक्षिण में विन्ध्याचल तक तथा पूर्व में बनारस तक के प्रदेश को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। इन युद्धों और विजयों के कारण कनिष्क का साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था। उसके शिलालेख और सिक्के

मथुरा, श्रावस्ती, सारनाथ और गोरखपुर जिले तक उपलब्ध हुए हैं। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी। वर्तमान समय में इसको पेशावर कहते हैं।

कनिष्क और बौद्ध धर्म—कुशन लोगों ने भी शीघ्र ही भारतीय धर्म और सभ्यता को अपना लिया। कैडफिसस द्वितीय शैव धर्म का अनुयायी था। कनिष्क ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। बौद्ध धम के इतिहास में उसका स्थान बहुत ऊँचा है। अशोक के बाद उसी का नम्बर आता है। कनिष्क का गुरु आचार्य पार्श्व था, जिसने उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। कनिष्क अपने खाली समय में बौद्ध धर्म की पुस्तकों का अनुशीलन किया करता था। उसने अनुभव किया कि बौद्धों में बहुत-से सम्प्रदाय हो गये हैं, और विविध पुस्तकों में बहुत-सी परस्पर विरुद्ध बातें पाई जाती हैं। बौद्ध धर्म का असली मन्तव्य क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता। अतः उसने अपने गुरु पार्श्व से प्रार्थना की कि बौद्धों की एक महासभा बुलवाई जाय, जिसमें इन विवादग्रस्त विषयों का निर्णय हो। महासभा का यह अधिवेशन काश्मीर के कुण्डलवन नामक विहार में किया गया। आचार्य वसुमित्र को इसका अध्यक्ष तथा अश्वघोष को उपाध्यक्ष नियत किया गया। यह महासभा कई महीनों तक बौद्ध धर्म के विवादग्रस्त विषयों पर विचार करती रही और अन्त में बौद्ध त्रिपिटक का एक प्रमाणिक भाष्य तैयार किया गया। कनिष्क की संरक्षा में बौद्धों की यह चौथी महासभा हुई थी।

कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म का बहुत विस्तार हुआ। कनिष्क का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इस विशाल साम्राज्य में कनिष्क की संरक्षा के कारण बौद्ध भिक्षु बड़ी सफलता से

अपना कार्य कर रहे थे। विशेषतया मध्य और उत्तरीय एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार का मार्ग इसी समय खुला। यही समय था जब कि खोतान, तुर्किस्तान तथा चीन में बड़ी तेज़ी के साथ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

कनिष्क भी विद्या का बड़ा प्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसके समय में भारत में बड़े-बड़े विद्वान उत्पन्न हुए। वसुमित्र, अश्वघोष और नागार्जुन जैसे प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित उस के दरबार की शोभा को बढ़ाते थे। प्रसिद्ध वैद्य चरक कनिष्क का राजवैद्य था। इसी प्रकार से अन्य अनेक भारतीय और विदेशी विद्वान उसकी संरक्षा में रहते थे।

कनिष्क के उत्तराधिकारी——कनिष्क के बाद उसका लड़का हविष्क राजगद्दी पर बैठा। इसके समय में कुशन साम्राज्य में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। यह शिव का उपासक था। हुविष्क के बाद वसुदेव राजा बना। इसके समय से कुशन-साम्राज्य का पतन शुरू हो गया।

ग्यारहवां अध्याय

गुप्त साम्राज्य

आन्ध्र और कुशन साम्राज्यों के पतन के बाद भारत में कोई ऐसा शक्तिशाली राज्य न रहा, जो देश के बड़े भाग पर शासन कर सके। परिणाम यह हुआ कि भारत में फिर बहुत से छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो गये। पुराने गणराज्य फिर उत्पन्न हुए। लिच्छवि, मालव, शिवि, यौधेय आदि समृद्ध गणराज्य फिर से अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। ईसवी सन की तीसरी सदी में भारत की यही दशा रही।

गुप्तवंश का उत्कर्ष—चौथी सदी के शुरू में मगध में एक स्वतन्त्र वंश राज्य कर रहा था, जिसे गुप्तवंश कहते हैं। इसका राज्य बहुत मामूली था। पर ३२० ईसवी में इस वंश में चन्द्रगुप्त नाम का एक राजा राजगद्दी पर बैठा, जो बहुत शक्तिशाली तथा महत्त्वाकांक्षी था। इस ने आसपास के राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन करना शुरू किया। उसकी शक्ति उस समय बहुत अधिक बढ़ गई, जब इसने लिच्छवियों के समृद्ध राज्य के साथ विवाह का सम्बन्ध स्थापित कर उनकी सहायता को प्राप्त किया। लिच्छवियों की मदद से इस ने बहुत से राज्यों को जीत लिया। धीरे-धीरे बढ़ते हुए उसका राज्य मगध से लेकर प्रयाग तक विस्तृत हो गया। चन्द्रगुप्त ने अपने नाम से एक नया सम्वत् भी चलाया, जिसे गुप्त सम्वत् कहते हैं।

समुद्रगुप्त—३३० ईसवी के लगभग चन्द्रगुप्त की मृत्यु हुई और उसका लड़का समुद्रगुप्त राजा बना। यह बड़ा प्रतापी और

यशस्वी सम्राट् हुआ है। इस ने लगभग सम्पूर्ण भारत को जीत कर अपने अधीन किया। इसकी विजयों के कारण इसे कुछ लोगों ने 'भारत का नेपोलियन' कहा है।

समुद्रगुप्त ने पहले उत्तरीय भारत के विविध राज्यों को जीत कर अपने अधीन किया। इन राज्यों से केवल अधीनता स्वीकार कराके ही समुद्रगुप्त संतुष्ट नहीं हुआ। उसने इनके राजाओं को मार कर इनके प्रदेश को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसके बाद उसने दक्षिणीय भारत पर आक्रमण किया। पर पहले मध्य भारत के जङ्गलों में निवास करने वाली जातियों को परास्त करना आवश्यक था। इन जंगली जातियों की स्वतन्त्रता नष्ट करने में समुद्रगुप्त को बहुत समय लगा। अन्त में वह सफल हुआ, इन जङ्गली जातियों को जीत कर समुद्रगुप्त ने दक्षिण कोशल के राजा महेन्द्रपाल पर आक्रमण किया। उसे जीत कर वह उड़ीसा के समुद्र तट के साथ-साथ दक्षिण की ओर आगे बढ़ा। मार्ग में महेन्द्रगिरि और अन्य पर्वतीय दुर्गों को जीतते हुए उसने दक्षिण भारत में प्रवेश किया। दक्षिणी-भारत के विविध राज्य एक-एक करके उसके अधीन होते गये। दक्षिण को विजय करता हुआ वह कांची (काञ्जीवरम) तक पहुँच गया। परन्तु इन राज्यों को उस ने नष्ट नहीं किया। अधीनता तथा वार्षिक उपहार देना स्वीकार कराके वह वापस लौट आया। उसकी शक्ति और साहस को देख कर कामरूप (आसाम), नेपाल, कमाऊं, मालवा आदि के विविध राजाओं ने स्वयं ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

विजय यात्रा समाप्त कर समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ के उपलक्ष में विशेष प्रकार के सुवर्णपदक बनवाये गये थे, जिन पर यज्ञीय अश्व का चित्र था। इन पदकों को राज्य-

कर्मचारियों तथा ब्राह्मण पुरोहितों में वितरण किया गया था।

समुद्रगुप्त जहां अपूर्व योद्धा और विजेता था, वहां साथ ही विद्या और कला का भी बड़ा प्रेमी था। उसे संगीत का बड़ा शौक था। अनेक विद्वान् उसके दरबार में आश्रय पाये हुए थे। उसके सिक्कों पर उसकी जो तसवीरें मिलती हैं, उनमें कुछ में तो वह आराम के साथ बैठा हुआ वीणा बजाता हुआ दिखाई देता है और कुछ में वह वीरता की प्रतिमा बना हुआ जीते-जागते शेर को पैर से कुचलता हुआ दिखाई पड़ता है। सचमुच उसमें वीरता और कला का अद्भुत सम्मिश्रण था। वह स्वयं हिन्दू धर्म का अनुयायी था। पर विधर्मियों से उसे द्वेष न था। उसने लंका के बौद्ध राजा को बोद्ध गया में बौध विहार बनाने की अनुमति प्रदान की थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य)—३७५ ईसवी में समुद्रगुप्त की मृत्यु हुई। उसके बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। यह इतिहास में विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इसने जहां अपने पिता के विशाल साम्राज्य को क़ायम रक्खा, वहां साथ ही काठियावाड़ और गुजरात को जीत कर उन्हें अपने साम्राज्य में मिलाया। ये प्रदेश शक लोगों के अधीन थे। इन्हीं को जीतने के कारण विक्रमादित्य को 'शकारि' या शकों का शत्रु कहा जाता है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रसिद्धि का मुख्य कारण शकों की विजय नहीं है। इसका असली कारण यह है कि चन्द्रगुप्त का शासन बहुत उत्तम था। वह बड़ा न्यायी और प्रजावत्सल राजा हुआ है। उसके आश्रम में बहुत से विद्वान् तथा कवि निवास करते थे। साहित्यिक उन्नति की दृष्टि से विक्रमादित्य का काल भारत में सुवर्णीय युग कहाता है, इसके दरबार के नौ रत्न

थे, जिनमें कालिदास, वराहमिहिर और आर्यभट्ट सब से प्रसिद्ध हैं। कलिदास भारत का सब से बड़ा कवि हुआ है। उसकी कविता न केवल भारत में अपितु संसार में अपना सानी नहीं रखती। उसका 'रघुवंश' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' संसार के सब से अच्छे काव्यग्रन्थों में गिने जाते हैं। कालिदास ही नहीं, अन्य भी बहुत से कवि इस समय भारत में हुए। संस्कृत भाषा की इस समय में बहुत उन्नति हुई। इस काल में भारतीय विज्ञनों ने भी बहुत उन्नति की। आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष और गणित पर अनेक नवीन ग्रन्थ लिखे। इन विद्वानों द्वारा ज्योतिष और गणित में जो उन्नति हुई उसके कारण भारत इन विज्ञनों में संसार का शिरोमणि हो गया।

फाहियान—चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था, इस कारण चीन के लोग भारत को अपना धर्म गुरु समझते थे। भारत में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने तथा बौद्ध तीर्थस्थानों का दर्शन करने के लिए बहुत से चीनी यात्री समय-समय पर भारत में आते रहते थे, इन में से कइयों ने अपनी भारतयात्रा का विवरण भी लिखा है। फाहियान इन में सब से प्राचीन है। यह ३६६ ईसवी में भारत आया था और ४१५ ईसवी में अपने देश को वापस लौट गया। १६ वर्ष तक भारत में निवास कर इसने बौद्धग्रन्थों का भलीभांति अध्ययन किया और सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर बहुत-सी पुस्तकों को अपने साथ ले गया।

फाहियान ने भारत का जो वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य के समय में भारत बहुत सुखी तथा समृद्ध था। जनता पर टैक्सों का बोझ बहुत कम था। शासन बहुत ही उदार और नरम था। अपराध के लिये दण्ड बहुत हलके दिये जाते थे। प्राणदण्ड किसी भी अपराध पर नहीं

मिलता था। देश के शासन की हालत इतनी अच्छी थी कि फाहियान को भारत भ्रमण में चोर या डाकू आदि की शिकायत कहीं भी अनुभव नहीं हुई।

बौद्ध धर्म का अभी देश में बहुत प्रचार था। स्थान-स्थान पर सुन्दर बौद्ध विहार बने हुए थे, जिनमें भिक्षु लोग सदाचार-मय जीवन के साथ विद्याभ्यास में लगे रहते थे। बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन, हिन्दु आदि धर्मों का भी प्रचार था। भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग सहिष्णुता के साथ एक ही प्रदेश में निवास करते थे। धार्मिक झगड़े बिलकुल न होते थे। फाहियान ने भारत का जो चित्र खींचा है, उससे ज्ञात होता है कि वह काल भारतीय इतिहास में सचमुच एक सुवर्णीय युग था।

कुमारगुप्त—चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद ४१५ ईस्वी में कुमार गुप्त (महेन्द्रादित्य) भारत का सम्राट् बना। इसके समय में भी गुप्त साम्राज्य खूब उन्नत रहा। कुमारगुप्त ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। इससे प्रतीत होता है कि इसने भी कुछ नवीन प्रदेशों को जीत कर अपने अधीन किया था।

हूणों के आक्रमण—कुमारगुप्त ने ४५५ ईसवी तक राज्य किया। उसके शासन के अन्तिम वर्षों में हूण लोगों ने भारत पर हमले शुरू कर दिये थे। हूण जाति मध्य एशिया में रहती थी, और शकों तथा कुशनों के समान अपने निवास स्थान को छोड़ कर चारों तरफ हमले कर रही थी। हूण लोग बड़े भयंकर तथा जंगली थे। वे जहां भी जाते, खून की नदियां बहा देते। वे टिड्डी दल के समान मध्य एशिया से निकल कर इस समय चारों तरफ व्याप्त हो रहे थे और संसार के सभ्य साम्राज्यों का विनाश कर रहे थे। रोमन साम्राज्य का इन्हीं हूणों ने विनाश किया। भारत पर भी इन्हों ने पांचवीं सदी के मध्य में हमले करने शुरू करदिये।

कुमारगुप्त इन हूण आक्रान्ताओं की बाढ़ को रोकने में बहुत कुछ सफल हुआ। उसके लड़के स्कन्दगुप्त ने अनेक युद्धों में हूणों को बुरी तरह परास्त किया। हूण लोग एक तूफान के समान थे, जिन्हें रोक सकना सम्भव नहीं था। ४५५ ईसवी में स्कन्दगुप्त भारत का सम्राट बना। उसका सारा शासन काल (४५५-४६७) इन्हीं हूणों के साथ युद्ध करने में व्यतीत हुआ। पर स्कन्दगुप्त के बाद गुप्त सम्राट हूणों को रोकने में समर्थ नहीं हो सके। हूणों के निरन्तर आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य टूट गया। मगध तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों पर गुप्तों का शासन कायम रहा, पर वह शक्तिशाली साम्राज्य जिसका प्रारम्भ चन्द्रगुप्त प्रथम ने किया था, अब स्थिर नहीं रह सका।

बारहवां अध्याय

मौखरि और वर्धन वंश

गुप्त साम्राज्य की शक्ति के ढीला पड़ने पर भारत में फिर अनेक राज्य स्थापित हो गये। इस काल में हूण लोगों के आक्रमण निरन्तर जारी थे। वे उत्तर-पश्चिमी भारत को जीत कर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। पर इस समय में भारत में अनेक ऐसे वीर उत्पन्न हुए, जिन्होंने बड़ी सफलता के साथ हूणों का मुकाबला किया और उनकी निरन्तर बढ़ती हुई बाढ़ को रोक दिया। इन वीरों में मौखरी वंश के राजा सब से प्रसिद्ध हैं। गुप्त वंश के कमज़ोर पड़ने पर जो अनेक नए राजवंश स्वतन्त्रता के साथ राज्य करने लगे थे, मौखरी उनमें से एक है। इनकी राजधानी कन्नौज थी। वर्तमान समय का सम्पूर्ण संयुक्तप्रान्त प्रायः इनके अधीन था। मौखरी वंश के राजा ईशानवर्मन और शर्ववर्मन ने हूणों के साथ बहुत से युद्ध किये। हूण लोग इस समय बहुत शक्तिशाली थे। चीन से लेकर यूरोप तक उनका साम्राज्य विस्तृत था। भारतवर्ष में उनकी राजधानी साकल (सियालकोट) थी। साकल को आधार बना कर हूण लोग भारत में निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। इस दशा में मौखरी वंश के इन राजाओं ने हूणों को रोकने का भारी काम किया। भारत के बहुत से अन्य राजा भी इस कार्य में उनकी सहायता कर रहे थे। इनमें राजा यशोधर्मन सब से प्रसिद्ध है। यह यशोधर्मन बड़ा वीर और योद्धा था। इसने न केवल हूणों को परास्त किया, पर बहुत से राजाओं

को जीत कर अपने अधीन किया। ईशानवर्मन और यशोधर्मन के प्रयत्नों का ही परिणाम हुआ कि हूणों की बाढ़ रुक गई।

वर्धनवंश का उत्कर्ष—गुप्तवंश के कमजोर पड़ने पर भारत में जो अनेक वंश स्वतन्त्रता के साथ राज्य करने लगे, उनमें वर्धन वंश भी एक था। इनकी राजधानी थानेसर थी। वर्धन राजा भी हूणों के साथ युद्ध करने तथा अपनी शक्ति को बढ़ाने में लगे हुए थे। वर्धनवंश का राजा प्रभाकरवर्धन बहुत प्रतापी था। उसने अपनी शक्ति का बहुत विस्तार किया। उसकी लड़की राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरी राजा ग्रहवर्मन के साथ हुआ था। इस कारण इन दोनों राज्यों में परस्पर मित्रता थी। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०४ ईस्वी में हुई। उसके बाद उसका लड़का राज्यवर्धन थानेसर की गद्दी पर बैठा।

जिस समय इधर वर्धन लोग अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे, उधर बंगाल में एक अन्य वीर अपने राज्य का विस्तार कर रहा था। इसका नाम था शशाङ्क। यह शशाङ्क बहुत प्रतापशाली और साहसी राजा हुआ है। इसने साम्राज्य का विस्तार करते हुए कन्नौज पर आक्रमण किया। राजा ग्रहवर्मन मारा गया और उसकी रानी राज्यश्री (राज्यवर्धन की बहन) कैद कर ली गई। जिस समय यह समाचार राज्यवर्धन ने सुना, उसने तुरन्त कन्नौज की तरफ़ प्रस्थान किया। पर शशाङ्क ने चाल चल कर राज्यवर्धन को भी मरवा दिया।

हर्ष वर्धन—राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद उसका भाई हर्षवर्धन ६०६ ईस्वी में थानेश्वर का राजा बना। इसने राजगद्दी पर बैठते ही शशाङ्क से लड़ने के लिये प्रस्थान किया। शशाङ्क इससे परास्त हुआ और राज्यश्री को कैद से छुटकारा मिला। कन्नौज के राजा ग्रहवर्मन के कोई सन्तान न थी। अतः वह राज्य भी हर्षवर्धन के

हाथ आ गया। अब हर्षवर्धन थानेसर और कन्नौज दोनों का राजा बन गया। वह केवल शशाङ्क को ही परास्त करके संतुष्ट नहीं हो गया, उसने सेना लेकर अन्य राज्यों पर भी आक्रमण किये। धीरे धीरे नर्मदा नदी से उत्तर का प्रायः सारा भारत उसके अधीन हो गया। वह छः वर्ष तक निरन्तर युद्ध करता रहा। पूर्व में उसके साम्राज्य की सीमा आसाम से छूती थी। आसाम (कामरूप) का राजा भी उसकी अधीनता स्वीकृत करता था। पश्चिम में मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ भी उसके साम्राज्य में शामिल थे। पंजाब में उसका राज्य व्यास नदी तक था, जिसके परे हूण लोगों का अधिकार था। इस तरह सम्राट् हर्षवर्धन एक बार फिर विशाल साम्राज्य का निर्माण करने में समर्थ हुआ।

सम्राट् हर्षवर्धन विद्या का बड़ा प्रेमी था। अनेक विद्वान् उस के दरबार में रहते थे। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट उसी के दरबार में रहता था। उसकी 'कादम्बरी' संस्कृत गद्य लेखन का सब से सुन्दर नमूना है। बाण ने सम्राट् हर्षवर्धन का एक जीवन चरित्र भी लिखा है जिसे 'हर्ष चरित्र' कहते हैं। हर्ष स्वयं भी एक अच्छा लेखक और कवि था। उसके लिखे हुए कई ग्रन्थ इस समय भी पाये जाते हैं।

हर्ष स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने बहुत से बौद्ध स्तूपों तथा विहारों का निर्माण कराया। पर अन्य धर्मों के साथ उसे द्वेष नहीं था। वह अन्य धर्मों के विद्वानों के साथ भी वार्तालाप किया करता था और उन्हें भी दान आदि द्वारा संतुष्ट रखता था। प्रति पांचवें वर्ष वह प्रयाग में एक भारी मेला करता था, जिसमें लाखों नर-नारी एकत्र होते थे। यहां बड़ा दान पुण्य किया जाता था। हर्ष के पास राजकोष में जो कुछ भी पांच साल में एकत्रित होता था, वह सब प्रयाग के इस मेले में दान कर

दिया जाता था। यह दान केवल बौद्धों को ही नहीं, अपितु सब धर्मों के लोगों को दिया जाता था।

ह्यूनत्सांग——हर्ष के समय में चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्यूनत्सांग भारत में यात्रा करने के लिये आया। जब वह चीन से चला था, तब उसकी आयु केवल २६ वर्ष की थी। पर इस युवावस्था में ही वह अपनी योग्यता और विद्वता के कारण बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। वह ६३२ ईस्वी में भारत में आया, और १३ वर्षों तक यहां रहा। उसने सारे भारत में भ्रमण किया और बौद्धों की धार्मिक तथा दार्शनिक पुस्तकों का अध्ययन किया। जब वह अपने देश को वापस लौटा, तो अपने साथ सैंकड़ों अमूल्य बौद्ध ग्रन्थ लेता गया। उस ने अपना शेष जीवन इन ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने में लगा दिया। ह्यूनत्सांग ने भारतवर्ष का जो यात्रा वृत्तान्त लिखा है, वह बहुत ही मनोरंजक तथा उपयोगी है। भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें उस से ज्ञात होती हैं।

ह्यूनत्सांग के समय में भारत का मुख्य नगर कन्नौज था। पाटलीपुत्र का वैभव उस समय कम हो गया था। शासन बहुत उत्तम था। जमीन से उपज का छटा भाग कर में लिया जाता था। राज-कर्मचारियों को वेतन के रूप में जागीरें दी जाती थीं। सार्वजनिक हित के कामों के लिये बेगार ली जाती थी, पर उसके बदले में वेतन अवश्य दिया जाता था। टैक्स हलके थे। सड़कें उतनी सुरक्षित नहीं थीं, जितनी कि फाहियान के समय में थीं। ह्यूनत्सांग को यात्रा करते हुए कई बार डाकुओं का भी सामना करना पड़ा। दण्डविधान भी विक्रमादित्य के समय की अपेक्षा अधिक कठोर था। नाक, कान, हाथ आदि काटने की सजायें मामूली तौर पर दी जाती थीं। लोगों का नैतिक आचरण बहुत ऊँचा

था। वे स्वच्छता तथा जीवन की पवित्रता का बहुत ध्यान रखते थे। मांस खाने का रिवाज बहुत कम था। ऊँचे घराने की स्त्रियां ऊँची शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। परदे का रिवाज नहीं था।

तक्षशिला विश्वविद्यालय का इस समय ह्रास हो चुका था। उसके स्थान पर नालन्दा विद्या का सब से बड़ा केन्द्र बन गया था। वहां हज़ारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। अध्यापकों की ही संख्या कई सौ थी। देश विदेश के विद्यार्थी दूर-दूर से वहां पढ़ने के लिये आते थे। नालन्दा में एक महान् पुस्तकालय भी था, जिस में हज़ारों ग्रन्थ इकट्ठे किये गये थे।

साम्राज्य का पतन—हर्ष की मृत्यु ६४७ ईस्वी में हुई। इस के बाद उसका विशाल साम्राज्य नहीं रह सका। कन्नौज की राजगद्दी पर हर्ष के मन्त्री अरुणाश्व ने अधिकार कर लिया। साम्राज्य में अव्यवस्था मच गई। हूणों तथा उस से सम्बद्ध जातियों के आक्रमण फिर शुरू हो गये। भारत फिर से अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त हो गया।

तेरहवां अध्याय

भारतीय सभ्यता का विदेशों में प्रचार

प्राचीन काल में भारत के लोग समुद्रयात्रा या विदेश जानेमें पाप नहीं मानते थे। इसके विपरीत लाखों भारतीय पुराने समयों में भारत से बाहर गए और वहां उन्होंने अपनी सभ्यताका प्रसार किया। बहुत से देशों में तो भारत के लोग धर्म प्रचारक के रूप में गए और वहां के निवासियोंने भारतके धर्म, सभ्यता और संस्कृति को अपनाया। लंका, बर्मा, स्याम, अनाम, नैपाल, तिब्बत, मध्य-एशिया, मंगोलिया, चीन और जापान में भारत के प्रचारकों ने न केवल भारतीय धर्म का प्रचार किया, पर वहां के लोगों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति की भी दीक्षा दी। इसके अतिरिक्त बहुत से देशों में भारतीयों ने जाकर अपने उपनिवेश बसाए। कम्बोडिया, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बाली के देश प्राचीन भारतीयों के बसाए हुए उपनिवेश हैं और वहां के अधिकांश निवासी भारतीयों की ही सन्तान हैं। इन देशों में अब तक संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते हैं। इनके शिलालेख भी संस्कृत में ही हैं और कहीं-कहीं पर तो अब भी हिन्दू-धर्म का प्रचार है।

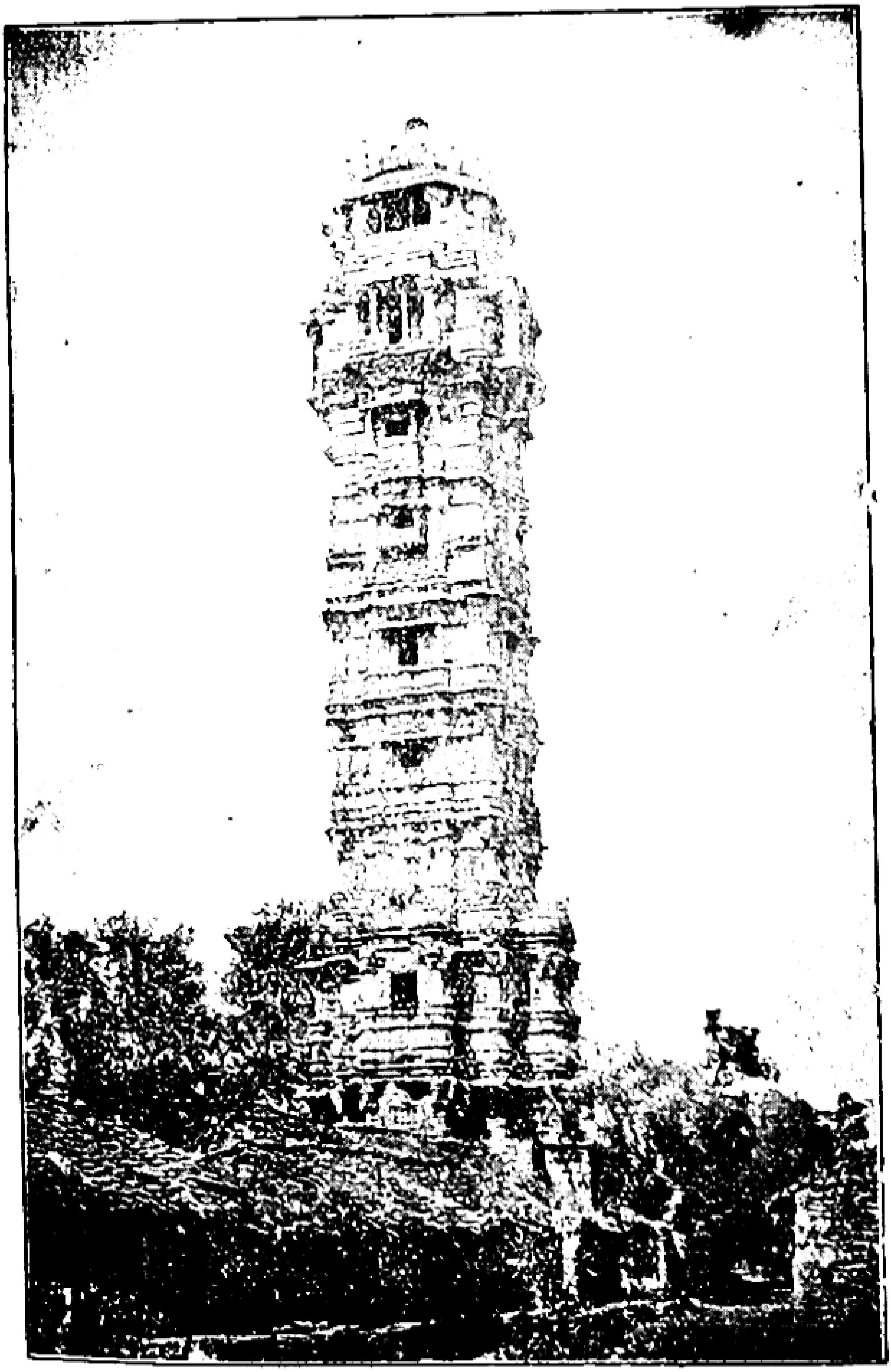
कम्बोडिया—भारत के प्राचीन उपनिवेशों में कम्बोडिया (इण्डो-चायना) का बड़ा महत्व है। ईसा की पहली शताब्दी में भारत के लोग वहां गए और अपना उपनिवेश बसाया। कम्बो-

डिया की जमीन बहुत उपजाऊ थी। वहां की आबोहवा भी बहुत उत्तम और स्वास्थ्यप्रद थी। शीघ्र ही यह उपनिवेश बहुत उन्नति कर गया। इसकी राजधानी अंगकोर थी। जिसके खण्डहर अब तक भी कम्बोडिया के जङ्गलों में विद्यमान हैं। अंगकोर में भारतीयों ने एक महान मन्दिर का निर्माण किया था, जिसे अंगकोर वट कहते हैं। अपने भग्नरूप में यह अब तक उपलब्ध होता है। भवन-निर्माण-कला का यह बहुत ही सुन्दर और आश्चर्यजनक उदाहरण है।

चम्पा—यह उपनिवेश कम्बोडिया के उत्तर में बसाया गया था। इसकी राजधानी अमरावती थी। इसकी स्थापना ईसा की पहली शताब्दी में हुई थी। १५ सदियों तक यह निरन्तर एक वैभवशाली राज्य के रूप में कायम रहा।

जावा और सुमात्रा—इन देशों में भारतीय लोग ईसवी सन के शुरू होने से भी पहले जा बसे थे। फाहियान पांचवीं सदी में भ्रमण करता हुआ जावा गया था। उसने लिखा है कि यहां भारतीय लोग खूब फल-फूल रहे हैं। भारतीयों के ही धर्म का यहां प्रचार है। सातवीं सदी में सुमात्रा में एक शक्तिशाली वंश का प्रारम्भ हुआ, जिसे शैलेन्द्र वंश कहते हैं। ये राजा बड़े प्रतापी और समृद्धिशाली थे। ये स्वयं बौद्ध थे और इनकी संरक्षा में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई। इन्हीं राजाओं ने 'बोरो बदूर' का प्रसिद्ध स्तूप तैयार कराया, जो संसार के आश्चर्यों में गिना जा सकता है। यह जावा के लिए एक गौरव की चीज़ है। सारे बौद्ध संसार में इससे अच्छा और विशाल स्तूप अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

बोर्नियो और बाली—इन द्वीपों में भी भारतीय लोग बहुत



चित्तौड़ का विजय स्तम्भ



अगकोर (कम्बोडिया)

पुराने ज़माने में जाकर बसे थे। बाली में तो हिन्दू धर्म का अब तक प्रचार है। अब तक भी बाली में हिन्दू मन्दिर विद्यमान हैं, और उन में हिन्दू देवताओं की पूजा होती है।

दक्षिण पूर्वीय एशिया के इन प्रदेशों में सदियों तक भरतीय सभ्यता का प्रचार रहा है। ये तो महान भारत के अपने हिस्से थे, जहां भारतीय लोग जाकर बसे हुए थे। जिस तरह आज-कल ब्रिटेन के उपनिवेश कैनाडा, आस्ट्रेलिया आदि में हैं, उसी तरह ये भारतीयों के उपनिवेश थे। इन स्थानों पर भारतीय सभ्यता के बहुत से चिह्न अब भी मिलते हैं।

पर भारतीय सभ्यता का क्षेत्र इन से बहुत अधिक विस्तृत था। लगभग सम्पूर्ण एशिया में भारतीय लोग गए और अपनी सभ्यता का प्रसार किया।

लंका——इस द्वीप में अशोक का लड़का कुमार महेन्द्र और कुमारी संघमित्रा बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए गए। लंका में अब तक भी बौद्ध धर्म का प्रचार है। बौद्ध भिक्षुओं के सिवाय सहस्रों भारतीय समय-समय पर दक्षिण भारत से जाकर लंका में बसते रहे हैं। उनके द्वारा भी लंका में भारतीय सभ्यता के प्रसार में बहुत सहायता मिली।

बर्मा——सम्राट् अशोक के समय में आचार्य उपगुप्त ने विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये जो महान् आयोजन किया था; उसमें सुवर्णभूमि (बर्मा) में भी प्रचारक भेजे गये थे। तब से बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार शुरू हुआ। इसके बाद आचार्य अश्वघोष ने बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बर्मा के निवासी अब तक भी बौद्ध हैं।

स्याम——इस देश में बौद्ध धर्म का प्रचार बर्मा से हुआ। बर्मा

में पेगू बौद्ध धर्म का बड़ा भारी केन्द्र था। वहीं से धर्म प्रचारक स्याम में गये। स्याम में भी अब तक बौद्ध धर्म का प्रचार है। भारतीय सभ्यता के अन्य भी बहुत से अवशेष वहां मिलते हैं।

खोतान—अशोक के पुत्र कुस्तन ने खोतान में पहले-पहल बौद्ध धर्म का प्रचार किया। खोतान में केवल बौद्ध प्रचारक ही नहीं गये थे। बहुत से भारतीय वहां जाकर स्थिर रूप से भी बस गए थे। खोतान भी एक प्रकार से भारत का उपनिवेश था। खोतान तथा उसके आस-पास के देशों में अब भी बौद्ध धर्म के बहुत से चिह्न मिलते हैं।

चीन—अशोक के समय में ही अनेक बौद्ध भिक्षु चीन गये और तब से लगातार वहां बौद्ध धर्म का प्रचार होता गया। धीरे-धीरे सारा चीन बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। समय-समय पर भारतीय विद्वान् चीन में जाते रहे और वहां अपने धर्म का प्रचार करते रहे। ५२० ईस्वी में बोधिधर्म नाम का प्रसिद्ध विद्वान चीन गया। उसके कुछ समय बाद आचार्य परमार्थ चीन पहुँचा। इसी तरह अन्य भी बहुत से विद्वान वहां गए। चीन के धार्मिक इतिहास में इन भारतीय विद्वानों का बड़ा ऊँचा स्थान है। हजारों भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद चीनी में किया गया। बहुत से चीनी विद्यार्थी व यात्री भारत में आकर अपनी विद्या और धर्म की प्यास को शान्त करते रहे।

जापान—कोरिया और जापान में बौद्ध धर्म का प्रचार चीन द्वारा हुआ। इसी तरह एशिया के अन्य देशों में भी बौद्ध धर्म द्वारा भारतीय सभ्यता का प्रसार हुआ। पश्चिमी एशिया में अब इस्लाम का सर्वत्र प्रचार है। पर अब से कुछ सदी पहले ही इन देशों में भी भारतीय सभ्यता और धर्म का

प्रचार था। अफ़ग़ानिस्तान तो पुराने ज़माने से ही भारत का हिस्सा था। यह बौद्ध धर्म का बड़ा भारी केन्द्र था। बौद्ध लोग इसे "उद्यान" कहते थे। दूर-दूर से बौद्ध भिक्षु गरमियां काटने के लिए उद्यान में आया करते थे। अब भी अफ़ग़ानिस्तान में सैकड़ों बौद्ध स्तूपों तथा विहारों के खँडहर मिलते हैं। केवल अफ़ग़ानिस्तान ही नहीं; खुरासान, पर्शिया, ईराक, मोसल और सीरिया तक में पहले बौद्ध धर्म और भारतीय सभ्यता का प्रचार रह चुका है।

—:—:—

चौदहवां अध्याय

साम्राज्य के लिये संघर्ष

और अरबों का आक्रमण

सम्राट हर्षवर्धन के बाद भारत में कोई एक शक्तिशाली राज्य न रहा। छोटे-बड़े अनेक राज्य स्थापित होगये। पर यह अवस्था भी देर तक नहीं रही। शक्तिशाली राजाओं ने इन राज्यों पर हमला कर उन्हें अधीनता में लाने के लिये प्रयत्न शुरू कर दिया।

कन्नौज का राजा यशोवर्मन—आठवीं सदी के शुरू में कन्नौज में राजा यशोवर्मन राज्य कर रहा था। यह बड़ा शक्तिशाली और महत्त्वकांक्षी था। इस ने एक बार फिर सारे भारत को एक शासन में लाने का प्रयत्न किया। सब से पूर्व इसने पूर्वीय भारत के राजा जीवितगुप्त द्वितीय पर आक्रमण किया। जीवितगुप्त मगध और बंगाल दोनों का राजा था। पर यशोवर्मन के सामने वह ठहर नहीं सका। वह परास्त होगया और बंगाल की खाड़ी तक पूर्वीय भारत यशोवर्मन के हाथ में चला गया। इसके बाद यशोवर्मन ने दक्षिण पर आक्रमण किया। नर्मदा नदी को पार कर पश्चिमीय घाट पर्वत तक के प्रदेश को अधीन कर उसने राजपूताना और पंजाब को जीता। निस्सन्देह, यशोवर्मन बहुत ही शक्तिशाली राजा था। उसने केवल भारत में ही नहीं, तिब्बत पर भी हमला किया। तिब्बत के साथ उसके अनेक युद्ध हुए, जिन में तिब्बत निवासी परास्त हुए। चीन के सम्राट् के साथ यशोवर्मन की मैत्री थी। ७३१ ईस्वी में उसने अपना एक दूतमण्डल चीनी सम्राट् के पास भेजा था। इस प्रकार यशोवर्मन ने भारत में फिर एक वार साम्राज्य की स्थापना की।

यशोवर्मन की कीर्ति केवल उसके युद्धों और विजयों के कारण ही नहीं है। वह स्वयं साहित्यसेवी और विद्वानों का आश्रय-दाता था। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि भवभूति उसी के दरबार में रहता था। भवभूति का स्थान संस्कृत के कवियों में बहुत ऊँचा है। कुछ लोग तो उसकी कविता को कालीदास से भी उत्कृष्ट मानते हैं। भवभूति का प्रसिद्ध नाटक 'उत्तर राम चरित' संसार के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में एक है। भवभूति के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से कवि और विद्वान यशोवर्मन के आश्रय में रहते थे। वाक्पति प्राकृतभाषा का एक बहुत प्रसिद्ध कवि हुआ है। यह यशोवर्मन के ही दरबार में रहता था। वाक्पति ने 'गउडवहो' नाम का एक प्रसिद्ध काव्य लिखा है, जिसमें यशोवर्मन के बंगाल विजय का वर्णन बहुत ही सुन्दर रीति से किया गया है।

काश्मीर का राजा ललितादित्य—सम्राट् यशोवर्मन की शक्ति देर तक क़ायम नहीं रह सकी। उन दिनों काश्मीर का राजवंश बहुत प्रबल तथा शक्तिशाली था। यशोवर्मन के समय में वहां का राजा ललितादित्य था। ललितादित्य से यशोवर्मन की यह बढ़ती हुई शक्ति सही नहीं गई। ७४० ईसवी में उसने कन्नौज पर आक्रमण किया। यशोवर्मन ने बड़ी वीरता के साथ उसका मुक़ाबला किया। दोनों ओर से लड़ाई जारी रही। पर अन्त में यशोवर्मन मारा गया और कन्नौज पर ललितादित्य का अधिकार हो गया। ललितादित्य केवल कन्नौज को जीत कर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। शीघ्र ही उसने विजययात्रा प्रारम्भ की। पहले मगध बंगाल, कलिङ्ग और कामरूप (आसाम) को जीता गया। फिर दक्षिण पर चढ़ाई की गई। उसके बाद मालवा और गुजरात को जीता गया। इस प्रकार भारत के बहुत बड़े भाग को जीत कर अपनी अधीनता में लाने में ललितादित्य सफल

हुआ। काश्मीर के इतिहास में ललितादित्य सब से प्रसिद्ध और शक्तिशाली राजा हुआ है। काश्मीर का प्राचीन इतिहास हमें 'राजतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है। जिसे कल्हण ने लिखा था। प्राचीन भारतीय इतिहास लिखना जानते थे और अपने देश की घटनाओं का वृतान्त लिखा करते थे, यह बात 'राजतरङ्गिणी' से भलिभांति सिद्ध हो जाती है। कल्हण ने "राजतरङ्गिणी" में ललितादित्य की वीरता की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

इतने बड़े साम्राज्य का विस्तार करने पर काश्मीर का वैभव बहुत बढ़ गया। भारत की विजय से जो अपार सम्पत्ति ललितादित्य ने प्राप्त की थी, उसका उपयोग काश्मीर में नये नगर बसाने, मन्दिर बनवाने तथा अन्य प्रकार से अपने देश को विभूषित करने में किया गया। मार्तण्ड का प्रसिद्ध मन्दिर ललितादित्य ने ही बनवाया था। अब यह मन्दिर नष्ट हो चुका है। पर उसके जो अवशेष मिलते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर बहुत ही महान, सुन्दर तथा अनुपम था। काश्मीर में इससे सुन्दर तथा विशाल अन्य कोई इमारत नहीं थी।

पर काश्मीर की यह शक्ति देर तक क़ायम नहीं रह सकी। ललितादित्य के उत्तराधिकारी उतने वीर और प्रतापी नहीं थे। उनके शासन में काश्मीर का विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और अनेक राज्य क़ायम हो गए।

गुर्जरों का उत्कर्ष—इन नवीन राज्यों में गुर्जर प्रतिहार वंश का राजा सब से मुख्य है। गुर्जर जाति के सम्बन्ध में यह कल्पना की जाती है कि ये लोग हूणों के साथ बाहर से भारत में आये थे और धीरे-धीरे इन्होंने भारतीय सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया था। आगे चल कर गुर्जर लोग भारतीय सभ्यता, संस्कृति

और धर्म के रंग में इतने अधिक रंग गए कि उन्हें विदेशी समझ सकना सुगम नहीं रहा। गुर्जर लोगों ने पहले-पहल अपना स्वतन्त्र राज्य राजपूताना में क़ायम किया था। वहां उनकी राजधानी भीनमाल थी। धीरे-धीरे वे अपनी शक्ति को बढ़ाते गये। ललितादित्य की मृत्यु के बाद जब काश्मीर का साम्राज्य कमज़ोर हो गया, तो उन्होंने मौका पाकर कन्नौज पर हमला किया और उसे जीत लिया।

गुर्जरों का राजा वत्सराज—जिस गुर्जर राजा ने कन्नौज को जीत कर अधीन किया, उसका नाम वत्सराज था। इसने ७८३ ईसवी में कन्नौज को जीता था। वत्सराज बहुत शक्तिशाली राजा हुआ है। वह केवल कन्नौज को जीत कर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, अपितु मगध और बंगाल पर भी उसने हमले किए। धीरे-धीरे सारा उत्तरीय भारत उसके अधीन हो गया।

अरबों की उन्नति—इससे पूर्व कि हम कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजाओं का अगला वृत्तान्त लिखें, अरबों के आक्रमण का जिक्र करना जरूरी है। छटी सदी में अरब में एक महापुरुष का जन्म हुआ, जिसका नाम मुहम्मद है। अरब की हालत पहले बहुत खराब थी। वहां बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे, जो सदा आपस में लड़ते रहते थे। राजनीतिक एकता का अरब में बिलकुल अभाव था। धर्म के लिहाज से भी अरब लोग बहुत हीन दशा में थे। वे विविध देवताओं को मानते थे, अनेक विधि-विधानों से उनकी पूजा करते थे। स्त्रियों की स्थिति उनमें बहुत खराब थी। अरब पुरुष जितनी स्त्रियों से चाहें, विवाह कर सकते थे। मुहम्मद ने आकर इस दशा से अरब लोगों का उद्धार किया। उसने उनके धर्म में बहुत-से नये सुधार किए। उसने सिखाया कि ईश्वर एक है। ईश्वर की मूर्ति नहीं होती, उसकी उपासना के लिए मन्दिरों

की आवश्यकता नहीं। ईश्वर पर विश्वास रखना तथा उसको सारे संसार का स्वामी मानना प्रत्येक मनुष्य के लिए उचित है। मनुष्य सब एक-दूसरे के लिए बराबर हैं। ऊँच-नीच का भेद हानिकारक है। मुहम्मद के धर्म विषयक विचारों का पहले बड़ा विरोध हुआ। पर धीरे-धीरे लोग उसकी शिक्षाओं को मानने लगे। कुछ ही समय बाद सारा अरब उसका अनुयायी हो गया। मुहम्मद ने जो नया धर्म शुरू किया, उसका नाम इस्लाम है।

पर मुहम्मद केवल धर्म सुधारक ही नहीं था। उसने अरब लोगों को संगठित कर एक सूत्र में बांधने के लिए भी बड़ा भारी काम किया। अरब के छोटे-छोटे राज्यों का अन्त कर उस ने एक शक्तिशाली राष्ट्र की रचना की। मुहम्मद ने अरब लोगों में इस तरह जीवन का संचार कर दिया कि वे एक पिछड़ी हुई जाति के स्थान पर शक्तिशाली तथा वीर लोग बन गए। मुहम्मद के उत्तराधिकारियों ने अरबों की इस शक्ति का प्रयोग साम्राज्य के विस्तार के लिए किया। अरबों की सेनाओं ने चारों तरफ़ हमले शुरू किए। देखते-देखते सीरिया, ईजिप्ट, अफ्रीका, स्पेन और पार्शिया अरबों के हाथ में चले गए। फ्रांस में लायर नदी से लेकर आक्सस और काबुल नदियों तक अरबों का साम्राज्य विस्तृत हो गया।

सिन्ध पर अरबों का आक्रमण—अरब साम्राज्य की सीमा भारत से आ लगी थी। इसलिए यहां के राजाओं के साथ उन का झगड़ा हो जाना कठिन बात न थी। उन दिनों सिन्ध में दाहिर नाम का राजा राज्य करता था। अरब साम्राज्य के खलीफ़ा के आदेश पर मुहम्मद कासिम ने एक बड़ी फौज के साथ ७१२ ईसवी में दाहिर पर आक्रमण किया। दाहिर ने अरबों के खिलाफ

बड़ी वीरता प्रदर्शित की। उसने एक-एक क़दम पर मुहम्मद बिन कासिम का मुक़ाबिला किया। पर अरबों की विश्वविजयिनी सेना को परास्त करना दाहिर के लिए कठिन काम था। दाहिर लड़ता-लड़ता मारा गया। उसके बाद भी सिन्ध के लोग निराश नहीं हो गए। दाहिर की विधवा रानी ने उसका नेतृत्व किया। पर आखिर अरबों ने सिन्ध की राजधानी आलोर को घेर लिया। आलोर में बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। पर अन्त में सिन्धी लोग परास्त हुए। सिन्ध पर अरबों का अधिकार स्थापित हो गया। अरब लोग आगे भी आक्रमण कर भारत को जीतना चाहते थे। उनमें असाधारण शक्ति थी। जिन लोगों ने स्पेन से पर्शिया तक अपना महान साम्राज्य स्थापित कर लिया था, वे सिन्ध तक ही कैसे सन्तुष्ट रह सकते थे। उन्होंने आक्रमण किए भी; पर वे सफल नहीं हो सके। कारण यह कि उनकी बाढ़ को रोकने के लिए गुर्जर लोगों की दीवार कायम थी। गुर्जर लोगों ने अभी कन्नौज को नहीं जीता था। पर राजपूताना में उनका राज्य भली-भांति स्थापित हो चुका था। सिन्ध को जीत कर जब अरबों ने आगे, मालवा और गुजरात की तरफ़ क़दम बढ़ाया, तो गुर्जर राजा नागभट्ट ने उनका मुक़ाबिला किया। नागभट्ट के कारण अरब लोगों की आगे बढ़ती हुई गति रुक गई और उन्हें सिन्ध तक ही सन्तुष्ट होना पड़ा। जो अरब लोग सारे पाश्चात्य संसार को जीत कर अपने अधीन कर चुके थे, वे भारत में आ कर असफल हो गए।

पन्द्रहवां अध्याय

गुर्जर, पाल और राष्ट्रकूट राज्य

हम पहले बता चुके हैं कि ललितादित्य द्वारा स्थापित काश्मीरी साम्राज्य के पतन के बाद भीनमाल के गुर्जर प्रतिहार-वंश ने कन्नौज को जीत लिया और उत्तरीय भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। आठवीं सदी में ही बंगाल में पाल-वंश का प्रादुर्भाव हुआ। कई सदियों से बंगाल की बहुत दुर्दशा चली आती थी। वह निरन्तर मगध व कन्नौज के सम्राटों के अधीन रहा था। पर पालवंश के साथ उस के भाग्य ने पलटा खाया और बंगाल के भी अच्छे दिन आये। पालवंश का संस्थापक गोपाल था, जिसे आठवीं सदी के अन्तिम हिस्से में बंगाल के लोगों तथा सरदारों ने मिल कर स्वयं राजा चुना था।

राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष—राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष दक्षिणी भारत में हुआ था। सम्राट् हर्षवर्धन के समय में दक्षिण में चालूक्यों का राज्य था। ये चालूक्य राजा बड़े शक्तिशाली थे। जिस तरह उत्तरी भारत में हर्षवर्धन का राज्य था, वैसे ही दक्षिण में चालूक्यों की शक्ति विस्तृत थी। हर्षवर्धन दक्षिणी भारत को भी जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लेता, यदि चालूक्य राजा पुलिकेशी द्वितीय उसका मुकाबला न करता। चलूक्यों की यह शक्ति बहुत देर तक कायम रही। पर ७५३ ईसवी के लगभग दन्तिदुर्ग नामक सरदार ने चालूक्य राजा कीर्तिवर्मन द्वितीय को मार कर स्वयं राज्य पर अधिकार कर लिया। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट जाति का था। उस के समय से राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। उसका उत्तराधिकारी

कृष्णराज बड़ा महत्वाकांक्षी तथा योद्धा था। उसने दूर-दूर तक विजय स्थापित की। पर कृष्णराज की प्रसिद्धि इन विजयों के कारण उतनी नहीं है, जितनी कि उस के कलाप्रेम के कारण। कृष्णराज के समय में एलोरा के गुहामन्दिरों का निर्माण हुआ था, जो पहाड़ को अन्दर-अन्दर से काट कर विशाल प्रासादों के रूप में बनाये गये हैं। इनके अन्दर जो चित्रकारी की गई है, वह भी आश्चर्य की चीज़ है। एलोरा के गुहामन्दिर भारतीय कला के अत्यन्त उत्तम उदाहरण हैं।

तीन शक्तियों में लड़ाई का प्ररम्भ—कृष्णराज के बाद ध्रुव राष्ट्रकूटों का राजा बना। यह अपने दक्षिणी भारत के राज्य से ही संतुष्ट नहीं रहा। इसने विन्ध्याचल पार कर उत्तरीय भारत पर आक्रमण किया। उत्तरीय भारतमें इस समय गुर्जर-प्रतिहार और पालवंश के राजा पहले ही आपस में लड़ रहे थे और एक दूसरे को परास्त कर अपना साम्राज्य बनाने का यत्न कर रहे थे। अब दक्षिण के ये राष्ट्रकूट इनमें और शामिल हो गये और अब इन तीन शक्तियों में साम्राज्य के लिये परस्पर संघर्ष शुरू हुआ।

धर्मपाल—इस संघर्ष में सब से पहले पालवंश के राजा धर्मपाल को सफलता मिली। उसने कन्नौज के ऊपर आक्रमण कर राजा इन्द्रायुध को परास्त कर दिया और उसे पदच्युत कर अपनी तरफ़ से चक्रायुध को राजगद्दी प्रदान की। धर्मपाल बड़ा शक्तिशाली राजा था। लगभग सारा उत्तरीय भारत उसके अधीन था। कन्नौज को जीत कर उसने वहां एक महासभा की थी, जिस में भोज, मत्स्य, मद्र, यवन, अवन्ति, गान्धार आदि के राजा अधीनस्थ राजा के रूप में उपहार लेकर उपस्थित हुए थे।

राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय—पर धर्मपाल का यह साम्राज्य देर तक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही गुर्जर-प्रतिहार लोग फिर प्रबल हो गये और उनके नेता नागभट्ट द्वितीय ने अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ किया। अनेक देशों को जीत कर उसने कन्नौज पर हमला किया और धर्मपाल द्वारा नियत किये हुए वहां के राजा चक्रायुध को परास्त कर बाहर खदेड़ दिया। नागभट्ट की इस बढ़ती हुई शक्ति को देख कर धर्मपाल बहुत घबराया। वह स्वयं उसे परास्त करने में समर्थ नहीं था, अतः वह और चक्रायुध राष्ट्रकूट के राजा गोविन्द तृतीय की सेवा में उपस्थित हुए और कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए उस से प्रार्थना की। गोविन्द ऐसे अच्छे मौके को कैसे हाथ से जाने दे सकता था। उस ने सेना लेकर उत्तरीय भारत पर आक्रमण किया और हिमलय तक सारे भारत को जीत लिया। गोविन्द तृतीय की शक्ति हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत थी। उस ने पेशवाओं के समान दक्षिण से उत्तर पर आक्रमण किया था और प्रायः सारे भारत को जीत कर अपने अधीन कर लिया था।

पालवंशी राजा देवपाल—इस पर गोविन्द तृतीय के विशाल साम्राज्य में शीघ्र अव्यवस्था शुरू हो गई। उसके अपने असली राज्य में झगड़े होने लगे। परिणाम यह हुआ कि वह दक्षिण को वापस लौट गया और उत्तरीय भारत में फिर गुर्जर प्रतिहार तथा पालवंशी राजा आपस में युद्ध करने लगे। धर्मपाल के बाद पालवंश में देवपाल राजा बना था। यह बड़ा शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी था। इसने गुर्जर राजा नागभट्ट के लड़के रामभद्र को बुरी तरह परास्त किया और सारे उत्तरीय भारत पर अपना शासन स्थापित किया। इसने बहुत-सी लड़ाइयां लड़ीं। बंगाल

की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक तथा हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक इनका राज्य विस्तृत था।

गुर्जर प्रतिहार राजा मिहिर भोज—८५० ईस्वी में देवपाल की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी कमज़ोर थे। वे पाल-साम्राज्य को कायम नहीं रख सके। परिणाम यह हुआ कि गुर्जर प्रतिहारों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया। गुर्जर प्रतिहार वंश में इस समय एक बहुत योग्य तथा साहसी व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम था मिहिर भोज। यह रामभद्र का लड़का था और अपने पिता की मृत्यु पर सन ८४३ में राजगद्दी पर बैठा था। राजगद्दी पर बैठते ही इस ने अपनी शक्ति को विस्तृत करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। देवपाल की मृत्यु के बाद उस का मार्ग निष्कण्टक हो गया था। उस ने इस सुअवसर का भली-भांति उपयोग किया और धीरे-धीरे पंजाब से लेकर मगध तक सारे प्रदेश को जीत लिया।

महेन्द्रपालदेव—मिहिर भोज के साथ गुर्जर प्रतिहार राज्य की शक्ति समाप्त नहीं हो गई। उस के उत्तराधिकारी महेन्द्रपालदेव ने उसे और भी विस्तृत किया। पाल राजाओं की शक्ति इस समय बहुत कम हो गई थी और उन के बहुत से प्रदेश स्थिररूप से गुर्जर प्रतिहारों के अधीन हो गये थे। पाल, गुर्जरप्रतिहार और राष्ट्रकूट लोगों में जो संघर्ष शुरू हुआ था, उस में अन्त में गुर्जर प्रतिहारों की विजय हुई और वे ऐसे साम्राज्य को बनाने में सफल हुए, जो एक सदी के लगभग कायम रहा।

गुर्जर प्रतिहारों का यह साम्राज्य बहुत समृद्ध तथा वैभवपूर्ण था। दसवीं सदी के शुरू में अलमसूदी नाम का एक अरब यात्री भारत में आया था। वह बगदाद का रहने वाला था। उसने अपने यात्रा वृत्तान्त में प्रतिहार साम्राज्य का वर्णन किया है।

उसमें लिखा है कि प्रतिहार साम्राज्य में चारों दिशाओं में चार सेनायें रखी गई हैं, जिनमें प्रत्येक में सात-सात लाख सैनिक हैं।

प्रतिहार साम्राज्य का पतन—९१८ ईसवी के लगभग राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय ने उत्तरीय भारत पर आक्रमण किया। इस समय उत्तरीय भारत का प्रतिहार सम्राट् महीपाल था। गंगा यमुना के संगम पर इन्द्र तृतीय और महीपाल में बड़ी भारी लड़ाई हुई। महीपाल हार गया। इन्द्र तृतीय यदि उत्तरीय भारत को जीत कर अपनी अधीनता में रख सकता, तो कोई हानि नहीं थी। भारत में एक शक्तिशाली विशाल राज्य कायम रहता। पर अपने देश के आन्तरिक झगड़ों के कारण इन्द्र तृतीय वापस लौट गया। महीपाल ने फिर अपना राज्य संभाला। पर राष्ट्रकूटों के हमले की वजह से जो भारी धक्का गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य को लगा था, वह बहुत बड़ा था। महीपाल फिर अपने साम्राज्य का पूरी तरह उद्धार नहीं कर सका। अनेक छोटे-छोटे राज्य फिर स्थापित हो गए। भारतवर्ष की वही दशा हो गई, जो सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के अनन्तर हो गई थी। ऐसे समय में दसवीं सदी के अन्त में, जब कि भारत में कोई एक शक्तिशाली राज्य नहीं था, इस देश पर तुर्क लोगों के आक्रमण शुरू हुए।

सोलहवां अध्याय

धर्म, साहित्य और शिक्षा

सम्राट् अशोक के बाद भारतवर्ष में बौद्धधर्म सब से मुख्य हो गया। बौद्धों के भिक्षु संघ की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई और सर्वसाधारण जनता बौद्ध भिक्षुओं को बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी। पर अन्य धर्म नष्ट नहीं होगये। बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन, वैष्णव और शैव आदि धर्मों का भी प्रचार होता रहा। भारतवर्ष के लोग धार्मिक दृष्टि से बहुत सहनशील होते थे। सर्व साधारण गृहस्थ लोग साधु महात्माओं का सम्मान करते थे। चाहे वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों। उनके लिये बौद्ध श्रमण, जैन मुनि व वैष्णव साधु—सभी सम्मान के पात्र थे। सभी के उपदेशों को वे श्रद्धा से सुनते थे। जिस किसी महात्मा की कीर्ति वे सुनते, उसी के उपदेश सुनने के लिये आजाते। इस बात का ख्याल वे न करते थे कि वह अपने को बुद्ध, महावीर या कृष्ण किस का अनुयायी कहता है। शुरू-शुरू में बौद्ध भिक्षु बड़े त्यागी, तपस्वी तथा विद्वान् होते थे। उनके सेवाभाव, सदाचार, त्याग और विरक्ति की धाक सब जगह स्वीकृत की जाती थी। यही कारण है कि लोग उन्हें सबसे अधिक मानते थे और उनके प्रभाव में रहते थे। पर धीरे-धीरे बौद्ध भिक्षुओं में त्याग और सेवा की मात्रा कम होने लगी। वे अपने मठों, जागारों और रुपये-पैसे के जंजाल में फँसने लगे। बौद्ध संघ केवल त्याग और सेवा के व्रतियों का समूह नहीं रह गया, पर श्रद्धालु गृहस्थों के दान-पुण्य द्वारा उसके पास अपार सम्पत्ति संञ्चित होगई। इस कारण स्वाभाविक रूप से उसका प्रभाव मन्द पड़ने लगा।

दूसरी तरफ़ अन्य धर्मों में बहुत से ऐसे महात्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने धर्म में नये जीवन, स्फूर्ति और उत्साह का संचार

किया। इनके अनुयायी साधु व भिक्षु लोग त्याग, सेवा और परोपकार के भाव में बौद्धों से बहुत आगे बढ़ गये। विद्वत्ता में भी ये नये धर्म प्रचारक बौद्धों को परास्त करने लगे। परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण जनता पर इन नये धर्मों का प्रभाव बढ़ने लगा और वह उनके प्रति आकृष्ट होने लगी।

कुमारिल भट्ट—इस प्रकार के नये धर्म प्रचारकों में कुमारिल भट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। वे आठवीं सदी में हुए थे और उन्हों ने बौद्ध गुरुओं से ही विद्या का अभ्यास किया था, पर उनकी वेदों तथा याज्ञिक कर्मकाण्ड में अपार श्रद्धा थी। कुमारिल भट्ट ने बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ किया और फिर से वैदिक मर्यादा का पुनरुद्धार किया।

शंकराचार्य—बौद्ध धर्म का खण्डन कर वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने वाले महापुरुषों में शंकराचार्य का स्थान सब से ऊँचा है। वे मलाबार के रहने वाले थे। उन्होंने दक्षिण से चल कर सारे भारत का दौरा किया। स्थान-स्थान पर उन्होंने बौद्ध विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। शंकराचार्य ने भारत भर में अपने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रचार किया। उनका अद्वैतवाद का सिद्धान्त संसार के सब से उत्कृष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों में से है। ब्रह्म के सिवाय अन्य कोई सत्ता संसार में वस्तुतः नहीं है, इस मत के सब से बड़े प्रतिपादक शंकराचार्य ही हुए हैं। बौद्धों के भिक्षुसंघ के अनुकरण में शंकराचार्य ने सन्यासियों का एक नया संघ बनाया, जिसके केन्द्र भारत भर में स्थापित किये गये। इस नवीन सन्यासी संघ का उद्देश भी वही था, जो बौद्ध संघ का था। शुरू-शुरू में इसमें भी वही जीवन, स्फुर्ति तथा त्याग विद्यमान था। बौद्ध संघ अब १३०० वर्ष के लगभग पुराना हो चुका था। उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इस नये सन्यासी-

संघ का प्रभाव निरन्तर बहुत बढ़ता गया और इसके कारण बौद्ध धर्म के ह्रास में बहुत सहायता मिली।

बौद्धधर्म का हिन्दूधर्म में सम्मिश्रण—महात्मा बुद्ध ने किसी नवीन धर्म का प्रतिपादन नहीं किया था। उन्होंने भारत के प्राचीन धर्म में ही सुधार करने का प्रयत्न किया था। बुद्ध की बहुत-सी शिक्षायें प्राचीन भारतीय धर्म से बिलकुल मिलती-जुलती थीं। इस कारण कुछ समय बाद बौद्धधर्म का भारत के पुराने धर्म में सम्मिश्रण शुरू होने लगा। बुद्ध को भी राम और कृष्ण के समान परमेश्वर का अवतार मान लिया गया। अन्य देवमूर्त्तियों के साथ बुद्ध की मूर्त्ति की भी पूजा होने लगी।

बौद्ध विहारों का ध्वंस—कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य आदि के प्रचार तथा हिन्दूधर्म में शामिल हो जाने की प्रक्रिया के होते हुए भी बौद्धधर्म का भारत से लोप नहीं हुआ था। अनेक स्थानों पर भिक्षुसंघ विद्यमान थे और बौद्ध विहारों में हज़ारों भिक्षु निवास करते थे। बारहवीं सदी तक भारत में बहुत से बौद्ध विहार खूब अच्छी दशा में विद्यमान थे। मुसलमान आक्रान्ताओं ने इन्हें नष्ट किया। इस्लाम के इन हमलों की वजह से भारत में बौद्धसंघों और विहारों का सर्वथा नाश हो गया।

शैव और वैष्णव धर्म का प्रचार—बौद्ध धर्म के ह्रास के समय भारत में जिस धर्म की प्रबलता हुई, वह भारत के प्राचीन धर्म से बहुत भिन्न था। यज्ञों के कर्मकाण्ड तथा विधि-विधानों के खिलाफ़ बौद्धों और जैनों ने आवाज़ उठाई थी। इन्हें अब अपना पुराना महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ। यज्ञ फिर भी होने लगे, पर उनका पहले जैसा प्रचार नहीं हो सका। इस समय भारत में जिन धर्मों का प्रचार हुआ, वे शैव और वैष्णव धर्म थे। इन का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल में हुआ था। वैदिक काल में भी

शिव और विष्णु की पूजा प्रचलित थी। पर आगे चल कर इन धर्मों ने बहुत ज़ोर पकड़ा और भारत में इन्हीं का महत्त्व सब से अधिक बढ़ गया।

पौराणिक साहित्य—पुराण बहुत प्राचीन ग्रन्थ हैं। भारतवर्ष के इतिहास की बहुत प्राचीन गाथायें तथा अनुश्रुतियां इनमें उपलब्ध होती हैं। पर वर्तमान समय में पुराण जिस रूप में मिलते हैं, उनका समय बहुत पुराना नहीं है। जहां उन में कुछ भाग बहुत ही प्राचीन काल के हैं, वहां सातवीं आठवीं सदी के बने हुए अंश भी उन में विद्यमान हैं। बड़े पुराणों की संख्या १८ है। इन में जहां प्राचीन ऐतिहासिक गाथायें मिलती हैं, वहां शिव, विष्णु आदि भारतीय देवताओं की महिमा, उनकी पूजा की विधि और भारतीय धर्म के विविध मन्तव्यों की व्याख्या भी बड़े सुन्दर रूप में पाई जाती हैं। बौद्ध धर्म के ह्रास के समय जो धर्म भारत में प्रचलित हुआ, उस का आधार मुख्यतया ये पुराण ग्रन्थ ही हैं।

स्मृति ग्रन्थ—जिस प्रकार भारतीय धर्म का आधार पुराण हैं, उसी तरह स्मृति ग्रन्थ भी हैं। स्मृतियों में चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों तथा नियमों का विस्तार से वर्णन है और भारतीय लोग अपने विवाह, विरासत, दायभाग, राजधर्म आदि के सम्बन्ध में किन नियमों का अनुसरण करें, इस का प्रतिपादन है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हों ने अपनी व्यवस्था दी है। स्मृतियां यहां बहुत-सी हैं; पर उन में सब से प्राचीन मनुस्मृति है। यद्यपि यह अपने वर्तमान रूप में ईसवी सन सें दो सदी पहले आई थी, पर उसमें जो बातें लिखी हैं, वह बहुत पुराने समय से गुरू शिष्य परम्परा द्वारा चली आती थीं। मनुस्मृति के समान विष्णु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति आदि

ऋषियों की स्मृतियां भी उपलब्ध होती हैं। ये ईसवी सन के पीछे बनीं। इन स्मृतियों पर विस्तृत टीकायें भी मिलती हैं। वर्तमान हिन्दू लोगों की प्रथाओं का मुख्य आधार याज्ञवल्क्य स्मृति और उसकी टीकायें ही हैं।

दर्शन---प्राचीन भारत में तत्त्वविद्या (फिलौसफ़ी) की भी बहुत उन्नतिहुई थी। परमेश्वर का क्या स्वरूप है, जगत की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, मनुष्य क्या है—इत्यादि प्रश्नों पर भारत के तत्त्ववेत्ताओं ने बहुत गम्भीर विचार किया था। इन्हीं विचारों से छः दर्शनों का विकास हुआ, जिन्हें सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा कहते हैं। ये छहों आस्तिक दर्शन हैं क्योंकि ये वेद की प्रामाणिकता को स्वीकृत करते हैं। इन दर्शनों का विकास उपनिषदों के काल से शुरू होकर वर्तमान समय तक जारी है। इन आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे दर्शन भी हैं, जो वेद को नहीं मानते। बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि विविध सम्प्रदायों ने दार्शनिक विचारों को बहुत उन्नत किया।

वैज्ञानिक ग्रन्थ—गणित, ज्योतिष, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में भी प्राचीन भारतीयों ने बहुत उन्नति की थी। आर्यभट्ट (पांचवीं सदी), वराहमिहिर (छटी सदी), ब्रह्मभट्ट (सातवीं सदी) और भास्कराचार्य (बारहवीं सदी) भारत के सब से बड़े गणितज्ञ और ज्योतिषी हुए हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में चरक, सुश्रुत और वाग्भट के नाम सब से अधिक प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार रसायन, भवननिर्माण तथा शिल्प, संगीत, कामशास्त्र, पशुपालन, कृषि आदि पर भी अनेक ग्रन्थ प्राचीन काल में बनाये गए थे।

शिक्षा—प्राचीन भारत में शिक्षा का कार्य ब्राह्मण लोग

करते थे । छोटी आयु में ही बालकों को विद्या पढ़ने के लिए उन्हें ब्राह्मण गुरु के पास भेज दिया जाता था। पर ऊँची शिक्षा के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। बौद्ध काल में शिक्षा के लिये तक्षशिला और काशी सब से अधिक प्रसिद्ध थे। तक्षशिला में दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते थे।

नालन्दा—अशोक के बाद से नालन्दा का विकास होने लगा और पांचवीं सदी में वह भारत का सब से बड़ा विद्यापीठ बन गया। ह्यूनत्सांग ने लिखा है कि वहां दस हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। व्याख्यानों के लिये १०० वेदियां थीं, जहां से बड़े-बड़े विद्वान् अध्यापक शिक्षा देते थे। नालन्दा का खर्च चलाने के लिये राज्य की ओर से १०० गांव दान दिये हुए थे, जिन की आमदनी से वहां का सब खर्च चलता था। नालन्दा में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय भी था, जिस में तीन इमारतें थीं। एक इमारत में ६ मंजिलें और शेष दो इमारतों में छः छः मंजिलें थीं।

विक्रमशिला और उदान्तपुरी——नालन्दा के समान विक्रमशिला और उदान्तपुरी के विद्यापीठ भी मध्यकाल में बहुत प्रसिद्ध थे। विक्रमशिला का विकास पाल सम्राटों की संरक्षा में विशेष रूप से हुआ। इस में भी हज़ारों विद्यार्थी पढ़ते थे। न केवल भारत, पर चीन, कोरिया, जपान आदि से भी बहुत से विद्यार्थी इन में पढ़ने के लिये आते थे।

सतरहवां अध्याय

गज़नी का साम्राज्य

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के बाद भारत में अनेक राज्य कायम हो गये थे। इन विविध राज्यों का उल्लेख करना अगले इतिहास को समझने के लिये जरूरी है—

चन्देल राज्य—वर्तमान बुन्देलखण्ड में पहले समय में चन्देल लोगों का राज्य था। पहले ये प्रतिहार साम्राज्य की अधीनता स्वीकृत करते थे। जब दसवीं सदी के पूर्वार्ध में प्रतिहार साम्राज्य की शक्ति कम हुई, तो यशोवर्मन नाम के चन्देल राजा ने अपने को स्वाधीन उद्घोषित कर दिया और आसपास के प्रदेशों पर आक्रमण कर अपनी शक्ति को बढ़ाने लगा। इस के बाद बुन्देलखण्ड का चन्देल राज्य स्वतन्त्र हो गया।

कलचूरी राज्य—जबलपुर के समीप के प्रदेशों में कलचूरी लोगों का शासन था। ये भी प्रतिहार साम्राज्य की अधीनता में थे। पर उसकी शक्ति क्षीण होने पर स्वतन्त्र हो गये। कलचूरियों में दसवीं सदी के मध्य भाग में लक्ष्मणराज नाम का प्रतापी राजा हुआ, जिसने अपने राज्य को पर्याप्त विस्तृत और शक्तिशाली बना दिया।

परमार राज्य—प्रतिहार साम्राज्य के पतन के समय में मालवा में परमार लोग स्वतन्त्र हो गये। इनकी राजधानी उज्जैन थी। संस्कृत कवियों के प्रसिद्ध आश्रयदाता राजा मुञ्ज और राजा भोज इसी परमार वंश में हुए।

चौहान राज्य—सम्भर और अजमेर के प्रदेशों में प्रतिहार साम्राज्य के पतन के समय चौहान (चाहुमान) लोग प्रबल हो गये और उन्होंने अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ किया।

ब्राह्मण साही राज्य——वर्तमान समय के अफ़गानिस्तान में कुशान साम्राज्य के पतन के बाद एक स्वतन्त्र वंश ने शासन करना प्रारम्भ कर दिया था, जिसे ब्राह्मण साही वंश कहते हैं। जब प्रतिहारों की शक्ति न्यून हुई, तो इन ब्राह्मण साही राजाओं ने अपने राज्य का विस्तार शुरू किया और पंजाब के बहुत से भाग को जीत कर अपने अधीन कर लिया। इन्होंने अपनी राजधानी काबुल से हटा कर भटिण्डा बनाई।

इस प्रकार दसवीं सदी के मध्य में भारत में कोई एक शक्तिशाली राज्य नहीं रह गया था। प्रतिहार साम्राज्य का स्वामी इस समय राज्यपाल था। पर उसकी शक्ति चन्देल, कलचूरी, परमार, चौहान, ब्राह्मणसाही आदि राजवंशों के राजाओं ने बहुत सीमित कर दी थी। यह परिस्थिति थी, जब गज़नी के तुर्क शासकों ने भारत पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

ग़ज़नी का उत्कर्ष——हम पहले बता चुके हैं कि अरब लोगों ने स्पेन से सिन्ध तक अपने विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था। पर एक सदी के बाद इस साम्राज्य में निर्बलता आनी शुरू हो गई। अरब लोग भोग-विलास में फँस गए और उनकी शक्ति कमज़ोर पड़ने लगी। इस से लाभ उठा कर तुर्क लोगों ने, जो अरब साम्राज्य के उत्तर में रहते थे, हमले करने शुरू किए और अपने अनेक स्वतन्त्र राज्य कायम किए। इनमें गज़नी का राज्य बहुत प्रसिद्ध है। इसकी स्थापना अलप्तगीन नाक के तुर्क ने ९६० ईसवी में की थी। तुर्क लोग पहले बहुत असभ्य तथा जंगली थे। पर अरब लोगों के संसर्ग में आकर उन्होंने सभ्यता का पाठ पढ़ा और अरबों की ही सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म को अपनाया।

सबुक्तगीन——९७५ ईसवी में अलप्तगीन की मृत्यु हुई। उस

के बाद सुबुक्तगीन गज़नी का राजा बना। अपनी शक्ति को बढ़ाने की इच्छा से उसने हिन्दूकुश पर्वत पार कर भारत पर आक्रमण किया। उत्तर-पश्चिमी भारत का राजा उस समय जयपाल था, जो ब्राह्मण साही वंश का था और भटिण्डा को राजधानी बना कर राज्य कर रहा था। जयपाल ने सुबुक्तगीन का मुकाबला करने के लिए ज़ोरशोर से तैयारी की। अन्य भारतीय राज्यों के पास सहायता के लिए सन्देश भेजा गया। कन्नौज का गुर्जर प्रतिहार राजा राज्यपाल बड़े उत्साह के साथ जयपाल की सहायता के लिए आगे बढ़ा। गुर्जर प्रतिहार राजाओं के कारण ही मुसलमान लोग अब तक सिन्ध से आगे नहीं बढ़ सके थे। राज्यपाल के अतिरिक्त चौहान और चन्देल राजाओं ने भी जयपाल की सहायता की।

अफ़गानिस्तान में खुर्रम नदी की घाटी में सुबुक्तगीन का भारतीय राजाओं ने मिल कर मुकाबला किया। दोनों ओर से खूब घमासान युद्ध हुआ। पर विजय सुबुक्तगीन की हुई। सिन्ध नदी तक उसका अधिकार स्थापित हो गया।

सुलतान महमूद—सुबुक्तगीन के बाद ९९७ ईसवी में महमूद गज़नी की राजगद्दी पर बैठा। महमूद संसार के सब से बड़े विजेताओं में से एक है। उसका स्थान सिकन्दर, सीज़र, समुद्रगुप्त और नेपोलियन के साथ है। उसने गज़नी के छोटे से राज्य को एक महान वैभवपूर्ण साम्राज्य बना दिया। भारतवर्ष पर उसने बहुत से हमले किए। भारवर्ष पर आक्रमण करने में उसका उद्देश्य अपना साम्राज्य का विस्तार और भारत की अपार सम्पति को लूटना था। ग्यारहवीं सदी ने शुरू होने के साथ ही उस ने भारत पर हमला किया। भटिण्डा के राजा जयपालने उसका वीरता के साथ मुक़ाबला किया। पेशावर के समीप घमासान लड़ाई

हुई। जयपाल परास्त हुआ और कैद कर लिया गया। महमूद गज़नवी ने वार्षिक रूप से अधीनता सूचक उपहार देना स्वीकृत करा के जयपाल को कैद से छुटकारा दे दिया। पर वृद्ध राजा जयपाल बार-बार तुर्कों से परास्त हो जाने के कारण इतने निराश हो चुके थे कि उन्होंने आत्माघात कर अपने जीवन का अन्त कर देने में ही अपना कल्याण समझा।

जयपाल की मृत्यु के बाद उत्तर-पश्चिमी भारत का राजा आनन्दपाल बना। आनन्दपाल ने महमूद का मुक़ाबला करने के लिए बड़ी भारी तैयारी की। एक बार फिर उत्तरीय भारत के राजाओं को सहायता के लिए निमन्त्रण भेजे गए। कन्नौज के गुर्जरप्रतिहार, बुन्देलखण्ड के चन्देल, अजमेर के चौहान और भारत के अन्यान्य राजा लोग महमूद का सामना करने के लिए अपनी-अपनी सेना लेकर एकत्र हुए। युद्ध के लिए बड़ी भारी तैयारी की गई। सारे भारत में इस समय एक तरह का जोश-सा फैल गया था। लोग अपने देश, धर्म, जाति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए नए उत्साह के साथ कटिबद्ध हो गए थे। कहते हैं कि इस युद्ध के लिए स्त्रियों ने अपने गहने तक बेच कर रुपया दिया। उधर महमूद भी भारतीय राजाओं की इस तैयारी से अपरिचित नहीं था। उस ने भी बड़े ज़ोर से सेना एकत्रित की। फिर पेशावर के नज़दीक महमूद और भारतीयों का युद्ध हुआ। भारतीय सेनायें बड़ी वीरता से लड़ीं। पर भाग्य ने महमूद का साथ दिया। आख़िर उसकी विजय हुई। हज़ारों भारतीय सैनिक इस युद्ध में मारे गए।

अब क्या था, इस विजय के बाद महमूद के लिए भारत में मार्ग खुल गया। भारत की सम्मिलित राजनीतिक और सैनिक शक्ति पेशावर के समीप महमूद से परास्त हो चुकी थी।

अब उस के लिए विजय का क्षेत्र खुला था। महमूद ने चुन-चुन कर ऐसे स्थानों पर आक्रमण किया, जहां से उसे सम्पत्ति के अपार भण्डार प्राप्त हुए। कांगड़ा की पहाड़ियों में उस समय नगरकोट में एक महान मन्दिर था, जो अपनी विपुल सम्पति के लिए प्रसिद्ध था। महमूद ने नगरकोट पर हमला किया और वहां की लूट में उसे लाखों सोने की दीनारें और सैकड़ों मन सोना चांदी प्राप्त हुआ।

कन्नौज की विजय—उत्तरीय भारत का सब से बड़ा नगर उस समय कन्नौज था। हर्षवर्धन के समय से यही प्रायः भारत की राजधानी रहा था। प्रतिहार साम्राज्य के समय में कन्नौज का वैभव बहुत बढ़ गया था। इस समय वहां राजा जयपाल शासन करता था। सुबुक्तगीन और महमूद दोनों के विरुद्ध जो संगठन भारतीय राजाओं ने बनाए थे, राज्यपाल उन सब में शामिल हुआ था। अब महमूद ने उनके राज्य पर आक्रमण किया। प्रतिहार साम्राज्य की सेना पेशावर के समीप युद्ध में परास्त हो चुकी थी। इस लिए महमूद का काम अब बहुत सुगम था। सन १०१६ में उसने कन्नौज को घेर लिया। कन्नौज के चारों ओर सात क़िले थे। उन्हें एक-एक करके जीत लिया गया। कन्नौज को बुरी तरह लूटा गया। हज़ारों आदमी क़त्ल किए गए। इस समय से कन्नौज का पतन शुरू हो गया। वह नगर जो सदियों तक भारत का शिरोमणि रहा था, महमूद के आक्रमण से नष्टप्राय दशा को पहुँच गया।

सोमनाथ पर आक्रमण—अन्य बहुत से नगरों तथा प्रदेशों को जीत कर सन १०२५ में महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया। सोमनाथ का मन्दिर उस समय अपनी सम्पत्ति के लिये दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। यह मन्दिर काठियावाड़ में स्थित था।

राजपूताने के रेगिस्तान में से गुज़र कर महमूद ने इस पर हमला किया। गुजरात के राजा ने महमूद का मुकाबला करने के लिए बड़ी भारी तैयारी की थी। बहुत से राजपूत राजा उसकी सहायता के लिये एकत्र हुए थे। सोमनाथ के समीप एक बार फिर भारतीयों ने अपनी शक्ति को आज़माया। दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। पर विजय महमूद की हुई। सोमनाथ के मन्दिर को महमूद ने बुरी तरह नष्ट किया। वहां पर अपार सम्पत्ति सञ्चित थी। वह सब लूट में महमूद के हाथ लगी। भारत की विजयों में जो धन महमूद के हाथ लगता था, उसे वह अपनी राजधानी गज़नी को भेज देता था।

सन १०३० में सुलतान महमूद की मृत्यु हुई। निस्सन्देह वह एक भारी विजेता और साम्राज्य-निर्माता था। उसने जो कुछ भी किया, अपने राज्य की शक्ति को बढ़ाने के लिये किया। भारत तथा अन्य देशों की विजय करते समय उसे जो अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, उसका उपयोग उसने गज़नी को उन्नत तथा विभूषित करने के लिये किया। महमूद के प्रयत्नों से गजनी अपने समय के सब से बड़े शहरों में गिना जाने लगा। महमूद केवल विजेता ही नहीं था, वह साहित्यप्रेमी तथा विद्वानों का आश्रय-दाता भी था। उसने गज़नी में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की। म्यूज़ियम और पुस्तकालय गज़नी में कायम किए। बहुत से विद्वान् उसके दरबार की शोभा को बढ़ाते थे। फ़ारसी का प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी उसी के दरबार में रहता था। उसका 'शाहनामा' फ़ारसी के सर्वोत्तम ग्रन्थों में शिरोमणि माना जाता है। फ़िरदौसी के अतिरिक्त अलबरूनी, उतबी, फरुख्की आदि बहुत से विद्वान् और कवि उसके आश्रय में रहते थे।

अलबरूनी—यह खीवा का रहने वाला था और महमूद के

साथ भारत में आया था। अलबरूनी कई वर्षों तक भारत में रहा, यहां रह कर वह गणित, ज्योतिष तथा संस्कृत का अध्ययन करता रहा। अलबरूनी ने अपनी भारत यात्रा का वृतान्त भी लिखा है, जिससे उस समय के भारत के सम्बन्ध में बहुत-सी उपयोगी बातें ज्ञात होती हैं।

महमूद के उत्तराधिकारी—महमूद का विशाल साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद कायम नहीं रह सका। उसके उत्तराधिकारी कमज़ोर थे तथा भोगविलास में फँसे हुए थे। उसके समय में गज़नी का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। भारत में जिन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की गई थी, वे सब स्वतन्त्र हो गए। महमूद द्वारा स्थापित साम्राज्य गज़नी तथा उसके आस-पास के प्रदेशों तक ही सीमित रह गया।

यद्यपि महमूद के आक्रमणों का भारतीय इतिहास पर कोई स्थायी असर नहीं हुआ, पर इसमें शक नहीं कि उनसे भारत की सैनिक शक्ति बहुत ढीली पड़ गई। प्रतिहार साम्राज्य के पतन के कारण पहले ही यहां कोई एक शक्तिशाली राज्य न था। अब महमूद के आक्रमणों से भारत की शक्ति को बहुत धक्का लगा।

अठारहवां अध्याय

चौहान तथा राठौर राज्य और भारत में अफ़गान राज्य की स्थापना

महमूद गज़नवी के आक्रमणों से कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति बहुत कमज़ोर पड़ गई। उसके बाद कुछ समय तक गुर्जर प्रतिहारों का राज्य अत्यन्त निर्बल रूप से जारी रहा, पर ग्यारहवीं सदी के अन्तिम भाग में चन्द्रदेव नाम के एक महत्त्वाकांक्षी सरदार ने कन्नौज के ऊपर आक्रमण किया और उसे जीत लिया। तब से गुर्जर प्रतिहारों का सर्वथा अन्त हो गया।

राठौर राज्य का विकास—यह चन्द्रदेव गहरवार या राठौर जाति का था। इसने कन्नौज को अपनी राजधानी बना कर शासन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे आस-पास के बहुत से प्रदेशों को जीत लिया। राठौर जाति का सब से प्रसिद्ध राजा गोविन्द चन्द्र हुआ है, जिसने पूर्व में मगध को भी जीत कर अपने अधीन कर लिया था। गोविन्दचन्द्र के बाद उसका पोता जयचन्द्र ११७० ईसवी में कन्नौज का राजा बना। राठौर लोगों के अधीन होकर कन्नौज एक बार फिर भारत का प्रमुख नगर बन गया। राठौर लोग बहुत शक्तिशाली थे। उन्होंने वर्तमान संयुक्त प्रान्त और बिहार के अधिकांश प्रदेशों पर अपना शासन स्थापित किया हुआ था।

चौहान राज्य—महमूद गज़नवी के बाद भारत में जिन राज्यों को अपने उत्कर्ष का सुवर्णीय अवसर प्राप्त हुआ, उन में अजमेर के चौहान सब से अधिक भाग्यशाली थे। हम पहले बता चुके हैं कि अजमेर और साम्भर के प्रदेशों में चौहानों का

स्वतन्त्र राज्य स्थापित था। बारहवीं सदी के मध्य भाग में इस राज्य का स्वामी विग्रहराज बना। विग्रहराज बड़ा महत्वाकांक्षी राजा था। उसने अपना राज्य बढ़ाना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे दिल्ली पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उस समय दिल्ली भारत का प्रधान नगर नहीं था। भारत में आजकल जो स्थान दिल्ली को प्राप्त है, वह उस समय कन्नौज का था। दिल्ली उस समय एक मामूली-सा नगर था, जहां तोमार जाति के क्षत्रिय राज्य करते थे। विग्रहराज ने अजमेर से दिल्ली तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया और इस प्रकार चौहानों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। विग्रहराज का लड़का सोमेश्वर था और सोमेश्वर का लड़का पृथ्वीराज। बारहवीं सदी के अन्तिम भाग में पृथ्वीराज चौहान राज्य का स्वामी था।

पृथ्वीराज और जयचन्द्र—भारत के इतिहास में पृथ्वीराज और जयचन्द्र का नाम बहुत प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर के चौहान राज्य का राजा था और जयचन्द्र कन्नौज के राठौर राज्य का। पृथ्वीराज का जीवन चरित्र चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक काव्य में बड़े विस्तार के साथ लिखा है। 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का सब से प्राचीन काव्य है। 'पृथ्वीराज विजय' नाम से एक काव्य संस्कृत में भी मिलता है। निस्सन्देह, पृथ्वी राज बहुत शक्तिशाली राजा था। उसने बुन्देलखण्ड के चन्देल राजाओं को परास्त कर दिया था और कन्नौज के राठौर राजा जयचन्द्र को भी जीत कर अपने अधीन करने का प्रयत्न कर रहा था। इस लिए पृथ्वीराज और जयचन्द्र में दुश्मनी होनी स्वाभाविक थी। पृथ्वीराज सारे उत्तरीय भारत का सम्राट बड़ी सुगमता से बन जाता, अगर जयचन्द्र उसके मार्ग में रुकावट का काम न करता। जब उत्तरीय भारत के ये दो शक्तिशाली राजा आपस

में लड़ने में लगे थे, उस समय पश्चिम की ओर से अफ़ग़ान लोगों के हमले प्रारम्भ हो गए।

गोर का राज्य—गज़नी के पड़ौस में एक छोटा-सा प्रदेश था। जिसे गोर कहते थे। यहां अफ़ग़ान लोग बसते थे। महमूद गज़नवी ने इसे भी जीत कर अपने अधीन कर लिया था। जब गज़नी के साम्राज्य की शक्ति कमज़ोर पड़ी, तो गोर स्वतन्त्र हो गया और वहां के राजा गज़नी के साथ युद्ध करने लगे। गज़नी परास्त हो गया और उसके राजा ने भाग कर भारतवर्ष में आश्रय लिया। गोर के अफ़ग़ानों ने गज़नी को बुरी तरह से लूटा। महमूद ने जिस गज़नी को भारत की लूट से खूब अच्छी तरह विभूषित किया था, उसे गोर के राजा अलाउद्दीन ने ख़ाक में मिला दिया। गज़नी की सारी सुन्दर इमारतें भस्मसात करदी गईं। उसके उद्यानों और पार्कों को उजाड़ दिया गया। वह गज़नी, जो न केवल एशिया के वरन संसार के सर्वश्रेष्ठ शहरों में गिना जाता था, अलउद्दीन की कृपा से मिट्टी में मिल गया।

मुहम्मदगौरी के आक्रमण—अलाउद्दीन गौरी के बाद गोर राज्य का स्वामी मुहम्मद गौरी बना। उसने अपने साम्राज्य को बढ़ाने की इच्छा से भारत पर आक्रमण करने शुरू किए। पश्चिमी भारत का राजा उस समय पृथ्वीराज चौहान था। ११६१ ईसवी में तलावड़ी के रणक्षेत्र में पृथ्वीराज और मुहम्मद गौरी की भयंकर लड़ाई हुई। मुहम्मद गौरी ने बड़ी तैयारी के साथ हमला किया था, पर पृथ्वीराज के मुक़ाबले में वह नहीं ठहर सका। बड़ी मुश्किल से जान बचा कर कुछ साथियों के साथ वह तलावड़ी के रणक्षेत्र से वापस लौटा। उसकी अफ़ग़ान सेना का बुरी तरह संहार हुआ।

मुहम्मद गौरी अपने इस अपमान को कभी नहीं भूला। वह सदा इसी चिन्ता में रहता था कि भारत पर फिर आक्रमण कर

पृथ्वीराज चौहान को परास्त करे। कहते हैं कि उस के पृथ्वीराज के साथ बहुत से युद्ध हुए। ऐसी कथा है कि १७ बार मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज से परास्त हुआ। पर आखिर उस का भाग्यसूर्य उदय हुआ और जिस तलावड़ी (कुरुक्षेत्र के समीप) के रणक्षेत्र में पहली बार वह पृथ्वीराज से बुरी तरह हारा था, वहीं पर फिर एक बार दोनों ओर की सेनायें एकत्रित हुईं। इस बार मुहम्मद गोरी ने सवा लाख के लगभग वीर अफ़गान योद्धाओं के साथ पृथ्वीराज के विरुद्ध मोरचा लिया। पर राजपूतों को हरा सकना आसान बात न थी। पृथ्वीराज की राजपूत सेनाओं ने बड़ी सफलता के साथ मुहम्मद गोरी के अफ़गानों का मुक़ाबला किया। खुली लड़ाई में राजपूतों को परास्त कर सकना असम्भव जान मुहम्मद गोरी ने एक चाल चली। उसने अपनी सेना को वापस लौटाने की आज्ञा दी। राजपूतों ने समझा, अब मैदान मार लिया गया। उन्होंने भागते हुए अफ़गानों का पीछा किया। जब राजपूत अपने कैम्प से बहुत दूर चले आए और अनेक छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट गए, तो मुहम्मद गोरी की सेनाओं ने उलट कर आक्रमण किया। राजपूतों को इस की कोई सम्भावना न थी। इस समय वे अफ़गानों के मुक़ाबले में न ठहर सके। हजारों राजपूत इस युद्ध में मारे गए। पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। उसके साथ मुहम्मद गोरी ने उदारता का बरताव नहीं किया। वह क्रूरता के साथ क़त्ल कर दिया गया।

इस प्रकार मुहम्मद गोरी का दिल्ली पर अधिकार होगया। पर वह इतने से ही संतुष्ट नहीं हुआ। कुछ समय बाद उसने उत्तरीय भारत के दूसरे शक्तिशाली राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया। राजा जयचन्द्र बड़ी वीरता के साथ लड़ा। पर गोरी की शक्ति बहुत अधिक थी। राजा जयचन्द्र मारा गया और कन्नौज पर भी मुहम्मद गोरी का अधिकार होगया।

बिहार और बंगाल की विजय—मुहम्मद गोरी का एक सेनापति था, जिस का नाम था मुहम्मद बिन बख्त्यार खिलजी। उसने सन ११९७ में बिहार और बंगाल पर आक्रमण किया। बिहार में उस समय पालवंश के राजा राज्य करते थे। इनकी शक्ति बहुत कम थी। ये खिलजी द्वारा परास्त कर दिए गए। बिहार प्रान्त उस समय भी बौद्ध धर्म का बड़ा भारी केन्द्र था। नालन्दा, विक्रमशिला और उदान्तपुरी के विश्वविद्यालय उसी प्रान्त में मौजूद थे। इन सब को बुरी तरह नष्ट किया गया। इनके पुस्तकालयों में आग लगा दी गई। सैकड़ों अन्य बौद्ध विहार मिट्टी में मिला दिये गए। भारत में बौद्ध धर्म को बख्त्यार खिलजी के इस आक्रमण से बहुत धक्का लगा। बहुत से बौद्ध विद्वान् और भिक्षु उत्तर व दक्षिण की तरफ़ भाग कर चले गये। बंगाल में इस समय सेन वंश का शासन था। सेन वंश ने बंगाल में अपना स्वतन्त्र राज्य ११ वीं सदी के अन्तिम वर्षों में स्थापित किया था। सेन राजा भी बख्त्यार खिलजी का मुकाबला नहीं कर सके। देखते-देखते बिहार और बंगाल दोनों अफ़गानों के अधीन हो गए।

इस प्रकार भारत में अफ़गान राज्य का सूत्रपात हुआ। महमूद गज़नवी ने भारत में बहुत से प्रदेशों को विजय तो किया था, पर उसका प्रभाव देर तक कायम नहीं रहा था। अब मुहम्मद गोरी द्वारा जो साम्राज्य स्थापित किया गया, वह स्थायी रहा। उसने अपने भारतीय राज्य पर शासन करने के लिए कुतुबुद्दीन ऐबक को नियत किया। कुतुबुद्दीन योग्य शासक और वीर सेनापति था। मुहम्मद गोरी की मृत्यु सन १२०६ में हो गई, पर उसने भारत में जो अफ़गान साम्राज्य कायम किया था, वह सदियों तक बना रहा।

उन्नीसवां अध्याय

गुलाम वंश

मुहम्मद गोरी उत्तरीय भारत का विजय कर उस पर शासन करने के लिये कुतुबुद्दीन ऐवक को नियत कर गया था। कुतुबुद्दीन पहले गुलाम था, पर अपनी योग्यता और वीरता के कारण धीरे-धीरे एक ऊँचे सेनापति पद पर पहुँच गया था। उसके पीछे जो सुलतान दिल्ली की गद्दी पर बैठे थे, वे भी प्रायः कुतुबुद्दीन के समान गुलाम से बढ़ते-बढ़ते ऊँचे पद पर पहुँचे थे। इसी लिये इस घराने को गुलाम वंश कहते हैं।

कुतुबुद्दीन ऐबक—कुतुबुद्दीन ने केवल चार वर्ष (१२०६-१०) तक राज्य किया। उसका अधिक समय भारत के अफ़गान साम्राज्य को मज़बूत तथा संगठित करने में व्यतीत हुआ। अनेक स्थानों पर उसके राजपूत राजाओं से युद्ध भी होते रहे। उसके नाम से दिल्ली में एक मीनार मिलती है, जो बहुत ऊँची है। उसे कुतुब की मीनार कहते हैं। बहुत से लोगों का मत है कि इसे पृथ्वीराज चौहान ने बनवाया था। उसकी बनवाई हुई एक मसजिद भी दिल्ली में विद्यमान है।

अल्तमश (१२११–३६)—कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका लड़का दिल्ली का सुलतान बना। पर बंगाल के सूबेदार अल्तमश ने उस पर आक्रमण कर उसे राजगद्दी से उतार दिया और स्वयं सुलतान बन गया। इस समय में भारत पर मंगोल या मुगल लोगों के आक्रमण शुरू हुए। मंगोल जाति उत्तर-

पश्चिमी चीन में निवास करती थी । उन में एक महान् वीर उत्पन्न हुआ, जिस का नाम चंगेज़खां था । चंगेज़खां ने बिखरी हुई मंगोल जाति को संगठित कर एक महान् शक्ति बना दिया। मंगोल लोगों ने आसपास के राज्यों पर आक्रमण कर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। चंगेज़खां का यह विशाल मंगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से लेकर यूरोप तक विस्तृत था । चंगेज़खां बौद्ध धर्म को मानने वाला था और उस के मंगोल लोग भी बुद्ध के अनुयायी थे। अलतमश को हमेशा इन मंगोल लोगों के हमलों का भय बना रहता था। जिस समय अलतमश मंगोल आक्रमण का प्रबन्ध करने में लगा था, उसी समय सिन्ध. बंगाल आदि के सूबेदारों ने मौका पाकर विद्रोह कर दिया। अलतमश ने शीघ्र ही उनको दबाया। उसने अनेक नये प्रदेश भी विजय किये । रणथम्भोर के किले को जीत कर मालवा पर उस ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

रज़िया बेगम (३६से४०)—अलतमश की मृत्यु के बाद उसकी लड़की रज़िया बेगम दिल्ली की राजगद्दी पर बैठी। यह बहुत योग्य और वीर स्त्री थी। अपने पिता अलतमश के शासन काल में वह शासन का अनुभव अच्छी प्रकार ले चुकी थी। वह मरदाने कपड़े पहन कर दरबार में बैठती थी और हाथी पर चढ़ कर स्वयं युद्ध का संचालन करती थी। एक स्त्री को राजगद्दी पर बैठी देख कर बहुत से अफ़गान सरदारों ने समझा कि अपने को स्वाधीन करने का यह अच्छा मौका है । उन्होने विद्रोह कर दिया, पर रज़िया ने इन विद्रोहों को बड़ी कुशलता के साथ शान्त किया। वह बड़ी सफलता के साथ अपना शासन करने में समर्थ होती पर उस ने एक भारी गलती की। उस का एक हबशी अफसर के साथ प्रेम हो गया और वह उस का पक्षपात

करने लगी। इस पर अन्य सरदार उस से असंतुष्ट हो गये और उन्हों ने षड्यन्त्र कर उसे मार डाला। दिल्ली की राजगद्दी पर अब तक केवल एक ही स्त्री को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह स्त्री रज़िया थी। इस में शक नहीं कि उस ने अपना शासन बड़ी सफलता के साथ किया।

बलबन—रज़िया की मृत्यु १२४० ई० में हुई थी। उस के बाद उसका छोटा भाई नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा। परन्तु वह बहुत कमज़ोर तथा अयोग्य था। उसके समय में शासन का वास्तविक संचालन बलबन के हाथ में था, जो नासिरुद्दीन का प्रधान सेनापति था। बलबन पहले सेनापति के रूप में और फिर सन १२६६ में, नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर स्वयं सुलतान के रूप में, अफ़गान सलतनत का कर्ता-धर्ता बना रहा। वह बहुत सख्त तथा ज़बर्दस्त शासक था। उसके समय में मंगोल लोगों के आक्रमण बड़ी प्रबलता के साथ हो रहे थे। एक बार तो मंगोल लोग लाहौर को जीत कर दिल्ली के बहुत समीप तक चले आये थे। बलबन ने उनकी बाढ़ को रोकने के लिये असाधारण योग्यता प्रदर्शित की। पंजाब में बहुत से नये किले बना कर उन में सेनायें रखी गईं, ताकि मंगोलों का सफलता से मुकाबला किया जा सके। बलबन के प्रयत्न से मंगोल लोगों के आक्रमण विफल हो गये।

जिस समय बलबन मंगोल लोगों से युद्ध करने में लगा था, उसके अनेक अफ़गान सरदारों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। दिल्ली की यह सलतनत फौज पर आश्रित थी। जिसके हाथ में फौज रहती, उसी के हाथ में राज्य रहता था। ये सरदार भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फौज के संचालक बन कर रहते थे. इनके पास फौज रहती तो इसलिये थी कि उन प्रदेशों को अपनी

अधीनता म रखें और नये देशों को जीत कर अफगान साम्राज्य में शामिल करें, पर जब इन्हें मौका मिलता, ये अपने को स्वतन्त्र राजा बनाने में ज़रा भी संकोच न करते। अपनी उसी फौज की सहायता से ये विद्रोह कर देते और सुल्तान के सामने इन्हें काबू में लाने की बड़ी भारी समस्या आ खड़ी होती। अगर तो सुल्तान कोई शक्तिशाली होता, तब तो वह इन्हें जीत कर फिर अपने अधीन कर लेता। अन्यथा वह अपने राज्य से ही हाथ धो बैठता और भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अलग-अलग राज्य कायम हो जाते।

बलवन अच्छा शक्तिशाली राजा था। वह इन विद्रोही सरदारों को दबाने में पूरी तरह सफल हुआ। मंगोलों के आक्रमण काल में बहुत से राजपूत राजा भी फिर स्वतन्त्र हो गये थे। उन पर भी हमले किये गये और उन्हें भी जीता गया।

बलवन का दरबार——बलवन बहुत प्रतापी और समृद्धिशाली सुलतान हुआ है। उसके दरबार की अजीब शान थी। एशिया भर के मुसलमान कवि, विद्वान् और साहित्यसेवी उस के दरबार में एकत्रित हो गये थे। इसका कारण यह है कि इस समय मंगोल लोगों के हमले से पश्चिमी एशिया के मुसलमान राज्यों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। वहां बिलकुल अव्यवस्था और अशान्ति मची हुई थी। इस कारण इन राज्यों से भाग कर कवि और विद्वान् लोग बलवन के दरबार में आश्रय प्राप्त कर रहे थे। बलबन के दरबार का सब से प्रसिद्ध व्यक्ति अमीर खुसरो है। यह फ़ारसी और उर्दू का मशहूर कवि हुआ है। उसकी कवितायें भारत के सर्व साधारण लोगों में अब तक प्रचलित हैं।

गुलाम वंश का अन्त——बलवन की मृत्यु सन १२८७ में हुई। उसके उत्तराधिकारी निर्बल तथा भोग विलास में फँसे हुए

थे। उनके समय में चारों ओर अफगान साम्राज्य में विद्रोह के चिह्न प्रगट होने लगे। सूबदारों और राजपूत राजाओं ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। सब ओर अव्यवस्था मच गई। इस दशा में खिलजी जाति के एक अफगान सरदार ने, जिसका नाम जलालुद्दीन था, सन १२९० में दिल्ली की राजगद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। तब से गुलाम वंश का अन्त हुआ और खिलजी वंश का शासन शुरू हुआ।

बीसवां अध्याय

खिलजी वंश

जलालुद्दीन खिलजी १२९० में दिल्ली का सुल्तान बना। उस समय उसकी आयु ७० वर्ष की थी। इस बुढ़ापे की आयु में उसके लिए यह आसान नहीं था कि वह साम्राज्य को भलीभांति सम्हाल सके। पर सुल्तान बन कर उसने अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया और अपने नरम, पर नीतिपूर्ण व्यवहार से सब लोगों को वश में कर लिया।

दक्षिण भारत पर आक्रमण—जलालुद्दीन के भतीजे का नाम अलाउद्दीन था। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी तथा साहसी नवयुवक था। उसे अवध और कड़ा के प्रदेशों का सूबेदार नियत किया गया था। मौका पाकर उसने ८००० चुने हुए घुड़सवारों के साथ दक्षिण की तरफ़ प्रस्थान किया। उसने मशहूर कर दिया कि मैं दक्षिण के किसी राजा के पास नौकरी करना चाहता हूँ, क्योंकि जलालुद्दीन मेरे साथ ठीक व्यवहार नहीं करता। पर उसका असली उद्देश्य देवगिरि के यादव वंश के राजा रामदेव पर आक्रमण करने का था। देवगिरि पर उसने अचानक ही धावा बोल दिया। देवगिरि में अलाउद्दीन ने खूब लूट मचाई। वहां से बहुत-सा धन लूट में प्राप्त कर अपने सूबे की तरफ़ वापस आया। इस विजय से उसके साहस और वीरता की धाक जम गई। जब बूढ़े सुल्तान जलालुद्दीन ने अपने भतीजे की इस लूट का समाचार सुना, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। वह कड़ा में उसका स्वागत करने के लिए गया। वहां अलाउद्दीन ने धोखा देकर बूढ़े सुल्तान की हत्या कर दी। इस हत्याकाण्ड के बाद अलाउद्दीन दिल्ली आया और वहां उस ने राजगद्दी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

अलाउद्दीन (१२९६–१३१५)—अलाउद्दीन अफ़गान साम्राज्य का सबसे प्रबल और जबर्दस्त सुल्तान हुआ है। उसने अपने शासन काल में जहां सम्राज्य विस्तार के लिए असाधारण कार्य किया, वहां साम्राज्य को दृढ़ करने तथा शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए भी बहुत प्रयत्न किया। अब तक अफ़गानों की शक्ति केवल उत्तरी भारत तक ही सीमित थी, पर अलाउद्दीन ने उसे दक्षिण में भी विस्तृत किया।

राजपूताना पर आक्रमण—दक्षिण पर आक्रमण करने से पूर्व यह ज़रूरी था कि उत्तरीय भारत पर अपना शासन भली-भांति स्थापित कर लिया जाय। इस लिए अलाउद्दीन ने पहले राजपूताना पर हमला किया। उन दिनों राजपूताने का सबसे प्रसिद्ध किला रणथम्भोर था। अलाउद्दीन ने रणथम्भोर पर स्वयं चढ़ाई की। वहां का राजा लड़ाई में मारा गया और रणथम्भोर पर सुल्तान का अधिकार हो गया। फिर उसने चित्तौड़ पर हमला किया। अलाउद्दीन ने सुना था कि चित्तौड के राजा भीमसेन की रानी पद्मिनी बड़ी रूपवती है. वह उसे अपने लिए लाना चाहता था। अफगान सेना ने चित्तौड़ को चारों तरफ़ से घेर लिया। बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। जब चित्तौड़ की रक्षा का कोई उपाय न रहा. तो राजपूत स्त्रियों ने जौहर का व्रत लिया। एक बड़ी भारी चिता तैयार की गई। और हज़ारों स्त्रियों के साथ रानी पद्मिनी ने उसमें प्रवेश कर लिया। राजपूतों में यह बहुत ही भयंकर, पर वीरतापूर्ण, प्रथा थी। जब वे निराश हो जाते थे. तो जौहर व्रत का आश्रय लते थे। संसार में उन्हें जो कुछ भी प्रिय था, जिसके लिये उन्हें जीवन का मोह होता था, उस सब को अपनी आंखों के सामने अग्निदेव के अर्पण करके स्वयं अपने प्राणों की आहुति देन के लिये निकल पड़ते थे। जब तक एक भी

राजपूत जीवित रहता था, शत्रु आगे नहीं बढ़ सकते थे। चित्तौड़ में भी यही सब कुछ हुआ। जिस समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ में प्रवेश किया, तो वहां पद्मिनी तो क्या, कोई भी स्त्री नहीं थी। सन १६०३ में चित्तौड़ अफ़गान साम्राज्य में सम्मिलित हुआ। उसका नाम बदल कर खिजराबाद रख दिया गया। चित्तौड़ के बाद जैसलमेर के ऊपर आक्रमण किया। जैसलमेर में भी जौहर का व्रत लिया गया। उसके बाद क्रमशः माण्डू, उज्जैन, धारा-नगरी और चन्देरी को जीता गया। इन विजयों से सम्पूर्ण उत्तरीय भारत में अलाउद्दीन का शासन भलीभांति स्थापित हो गया।

दक्षिण का विजय——अलाउद्दीन ने दक्षिणी भारत को जीतने का कार्य मलिक काफूर के सुपुर्द किया। मलिक काफूर बहुत ही योग्य और वीर सेनापति था। वह संसार के सब से बड़े विजेताओं में से एक था। उसने एक बहुत बड़ी सेना को साथ ले दक्षिण की तरफ़ प्रस्थान किया और महाराष्ट्र, गुजरात, वारंगल (तेलिङ्गाना) और पाण्ड्य देश को जीत लिया। इन देशों के राजाओं के साथ उसके घमासान युद्ध हुए। पर सब जगह मलिक काफूर सफल हुआ और उसकी विजयों से अफ़गान साम्राज्य दक्षिण भारत में मदुरा तक विस्तृत हो गया।

अलाउद्दीन का शासन—अलाउद्दीन ने केवल साम्राज्य का विस्तार करने पर ही ध्यान नहीं दिया, अपितु शासन को उन्नत तथा व्यवस्थित करने के लिये भी बहुत कोशिश की। उस समय अफ़गान शासन की हालत बहुत खराब थी। बार-बार विद्रोह होते रहते थे। जहां एक तरफ़ अफ़गान सरदार मौका पाते ही विद्रोह करने के लिये तैयार रहते थे, वहां दूसरी तरफ़ हिन्दू-प्रजा भी अफ़गानों के शासन को पलट देने के लिए मौके की

नाक में रहती थी। अलाउद्दीन ने इनका बड़ी सख्ती के साथ इन्तज़ाम किया। अफ़गान सरदार विद्रोह न कर सकें, इसके लिये उसने बहुत से जासूस नियत किए, जो हमेशा सरदारों की गतिविधि पर नज़र रखते थे। जो कुछ भी उन्हें मालूम पड़ता, सुलतान तक पहुँचा देते। जासूसों के कारण अफ़गान सरदारों की नाक में दम हो गया और उनके लिए साजिश करना बहुत कठिन हो गया। अफ़गान सरदार प्रायः आपस में मिल कर बैठते थे। उनकी अपनी क्लबें थीं, जिन में एकत्रित हो वे राज्य सम्बन्धी बातों पर विचार किया करते थे। अलाउद्दीन ने सोचा कि ये क्लबें सारी मुसीबत की जड़ें हैं। यदि अफ़गान सरदारों को आपस में मिलकर राजनीति पर विचार ही न करने दिया जाय, तो वे षड्यन्त्र कैसे कर सकेंगे। इसलिए उसने इन क्लबों को बन्द कर दिया और साथ मिल कर शराब पीने की मुमानियत कर दी।

हिन्दुओं के साथ अलाउद्दीन ने बड़ा कठोर बर्ताव किया। उसका सिद्धान्त था कि जब तक हिन्दुओं को बिलकुल ग़रीब और असहाय नहीं बना दिया जायगा, तब तक उन में अपने अतीत गौरव का विचार नष्ट न हो सकेगा और वे स्वतन्त्र होने का ख्याल नहीं छोड़ सकेंगे, इसलिये उसने हिन्दुओं पर भारी टैक्स लगाये। उपज का आधा हिस्सा कर में लेना शुरू किया। उस के अतिरिक्त मवेशियों और मकानों पर भी टैक्स लगाये गये। इन सब टैक्सों का परिणाम यह हुआ कि अलाउद्दीन की नीति बहुत कुछ सफल हुई और हिन्दू लोग पहले की अपेक्षा बहुत ग़रीब हो गये।

खिलजी वंश का पतन—सन १३१५ में अलाउद्दीन की मृत्यु हुई। निस्सन्देह, वह बहुत ही शक्तिशाली सुलतान था।

उस के मरते ही चारों ओर विद्रोह होने लगे। दक्षिण भारत के विविध राजा स्वतन्त्र हो गये। मलिक काफ़ूर की विजयों ने जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, वह बात की बात में समाप्त हो गया। उत्तरी भारत में भी अशान्ति फैल गई। राजपूत राजा स्वतन्त्र हो गये और अफ़ग़ान सुलतान अलाउद्दीन का मज़बूत हाथ हटते ही फिर पहले के समान उपद्रव मचाने लगे। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी बहुत निर्बल तथा भोग विलास में फंसे हुए थे। उन्होंने कुल मिला कर पांच वर्ष तक राज्य किया। अन्त में पंजाब के सूबेदार गयासुद्दीन तुगलक ने इस गड़बड़ तथा अव्यवस्था की समाप्ति करने के लिये दिल्ली पर आक्रमण किया और अपना शासन स्थापित कर लिया।

इक्कीसवां अध्याय

तुगलक वंश

सन १३२० में गयासुद्दीन तुगलक अफ़गान सल्तनत का स्वामी बना । उसका बाप जाति का तुर्क था, पर उसकी मां पंजाब की जाटनी थी। इस प्रकार गयासुद्दीन तुगलक में हिन्दू खून भी विद्यमान था । वह बड़ा योग्य और दयालु सुल्तान हुआ है। उसने अफ़गान साम्राज्य में व्यवस्था स्थापित की और विद्रोही सरदारों को परास्त किया ।

दक्षिण की विजय—अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद दक्षिणी भारत स्वतन्त्र होगया था। गयासुद्दीन ने उसे जीतने के लिए अपने लड़के जूना को भेजा । यह जूना बड़ा वीर तथा साहसी था । आगे चल कर यही मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा । जूना ने दक्षिण के विविध हिन्दू-राज्यों को जीत कर फिर अफ़गान सल्तनत में शामिल किया। इस प्रकार गयासुद्दीन के समय में अफ़गान साम्राज्य का पुनः विस्तार हुआ।

मुहम्मद तुगलक—सन १३२५ में गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु हुई । उसकी मृत्यु में जूना का हाथ था । अब जूना मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली का सुल्तान बना । मुहम्मद बहुत ही सुशिक्षित, विद्वान तथा योग्य सुल्तान हुआ है। अफ़गान शासकों में उससे अधिक योग्य और विद्वान अन्य कोई सुल्तान नहीं हुआ, उसकी स्मरण शक्ति बड़ी अद्भुत थी। उस समय जो भी विद्यायें थीं, वे सब मुहम्मद तुगलक को आती थीं। वह गणित, ज्योतिष, दर्शन, विज्ञान, कविता आदि सब विषयों का पण्डित था। कविता बनाने में वह बहुत निपुण था। स्वयं कट्टर मुसलमान होते हुए भी उस में धर्मान्धता न थी । शासन करते हुए वह

मुल्लाओं को अपना पथप्रदर्शक नहीं समझता था। उस के दरबार में बहुत से विद्वान तथा साहित्यसेवी निवास करते थे। जहां मुहम्मद तुगलक में इतने गुण थे, वहां दोष भी कम न थे। शासन में वह बहुत कठोर था। अनेक बार उस की कठोरता क्रूरता और अत्याचार के रूप में परिणत हो जाती थी। मुहम्मद तुगलक क्रियात्मक आदमी नहीं था। उसने बहुत-सी ऐसी स्कीमें बनाईं, जिन्होंने लाभ के स्थान पर नुकसान अधिक किया। साथ ही, वह क्रोधी भी बहुत था। अनेक बार क्रोध में आकर वह अपने आप को भूल जाता था और लोगों के साथ बड़ा कठोर बर्ताव करता था।

राजधानी का परिवर्तन—मुहम्मद तुगलक का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। दक्षिणी भारत उसके अन्तर्गत था। इस नये जीते हुए प्रदेश में विद्रोह की सम्भावना सदा बनी रहती थी। दिल्ली जैसे उत्तरी शहर में रह कर दक्षिण को काबू में रख सकना कठिन था। इसलिये मुहम्मद तुगलक ने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया। देवगिरि का नाम बदल कर दौलताबाद कर दिया गया। यह योजना बहुत अच्छी थी। देवगिरि वस्तुतः ऐसा नगर था, जहां से उत्तर और दक्षिण दोनों ओर के प्रदेशों पर भली भांति नज़र रखी जा सकती थी। पर मुहम्मद तुगलक ने एक भारी ग़लती की। बजाय इसके कि राजकर्मचारियों तथा उनके साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों को ही देवगिरि जाने की आज्ञा दी जाती, उसने दिल्ली के सब लोगों को अपना सारा माल-असबाब लेकर देवगिरि चलने का हुक्म दिया। दिल्ली की इतनी बड़ी आबादी का सैकड़ों मील दूर देवगिरि जा सकना आसान बात न थी। यद्यपि रास्ते में यात्रा की सुविधा के लिए बहुत कुछ प्रबन्ध किया गया था, पर तो भी लोगों को बहुत कष्ट हुआ। देवगिरि पहुँच कर दिल्ली

के निवासी बहुत कष्ट अनुभव करने लगे। अन्त में विवश होकर सुल्तान ने लौटने का हुक्म दिया और दिल्लीनिवासी हजारों कष्ट सहते हुए बड़ी मुश्किल से अपने घर वापस आये। देवगिरि को राजधानी बनाने की स्कीम सफल न हो सकी।

तांबे के सिक्के—मुहम्मद तुगलक के समय एक भारी अकाल पड़ा। उसके कारण कृषकों की दशा बहुत खराब हो गई। सरकारी आमदनी में बहुत कमी होने लगी। राजधानी बदलने में तथा विविध युद्धों में रुपया बहुत खर्च हो गया था। उधर आमदनी में कमी पड़ गई थी। इस दशा में मुहम्मद तुगलक ने चांदी के सिक्कों के स्थान पर तांबे के सिक्के प्रचलित करन का विचार किया। जिस तरह आजकल कागज़ के नोट जारी किए जाते हैं, और उनकी कीमत राज्य के कानून के अनुसार चांदी व सोने के सिक्कों के बराबर रहती है, इसी प्रकार मुहम्मद तुगलक तांबे के सिक्के जारी करना चाहता था। पर उस जमाने में यह कर सकना आसान काम न था। लोग सरकारी सिक्कों की नकल में अपने आप तांबे के सिक्के न बना सकें, इसका इलाज उस समय की सरकार सुगमता के साथ नहीं कर सकती थी। इस कारण मुहम्मद तुगलक की यह स्कीम भी निष्फल हो गई। उसने जो तांबे के सिक्के जारी किये थे, ठीक वैसे ही लाखों सिक्के लोगों ने स्वयं अपने घरों में बना लिये। आखिर सुल्तान को यह सिक्का बन्द करना पड़ा और अपनी साख कायम रखने के लिये तांबे के सिक्कों के बदले में सोने-चांदी के सिक्के देने पड़े। इससे राज्य को बहुत हानि हुई। लोग नकली सिक्कों के बदले में भी सोना चांदी ले गये और इससे मुहम्मद तुगलक का खजाना बहुत कुछ खाली हो गया।

कठोर शासन—अलाउद्दीन की भांति मुहम्मद तुगलक ने भी

सर्वसाधारण जनता को काबू में रखने का यही उचित उपाय समझा कि ग़रीब बना कर उनकी शक्ति को नष्ट कर दिया जाए। इसीलिए उसने किसानों पर भारी टैक्स लगाए। मालगुज़ारी को दुगना कर दिया। सरकारी कर्मचारी बड़ी निर्दयता के साथ टैक्सों को वसूल करते थे। जनता इससे बहुत तंग हुई। बहुत-से लोग तो अपने खेत छोड़ कर जंगलों में भाग गए। इसमें सन्देह नहीं कि इन उपायों से जनता को काबू में रखना सुगम हो गया, पर इनके कारण भारत की उपज को जो नुकसान पहुँचा, उसकी क्षति-पूर्ति कर सकना आगे चलकर असम्भव हो गया।

विद्रोह का प्रारम्भ—मुहम्मद तुगलक की कठोर नीति तथा शासन सम्बन्धी विविध गलतियों का परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य के विविध प्रदेशों में विद्रोह शुरू हो गये। सन् १३३७ में फकरुद्दीन ने बंगाल में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। मुहम्मद तुगलक उसे परास्त नहीं कर सका और बंगाल अफ़गान-सल्तनत की अधीनता से निकल गया। सन १३३६ में सुदूर दक्षिण में हरिहर नाम के हिन्दू वीर ने मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोह किया और विजयनगर के शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। धीरे-धीरे दक्षिणी भारत का बहुत-सा भाग विजयनगर की अधीनता में आ गया और सुदूर दक्षिण में अफ़ग़ान राज्य की इतिश्री हो गई। सन १३४७ में देवगिरि को केन्द्र बना कर हसन गंगू ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, जो इतिहास में बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। साम्राज्य के अन्य प्रदेशों में भी निरन्तर विद्रोह होते रहे। मुहम्मद तुगलक का अन्तिम जीवन इन्हीं विद्रोहियों के साथ युद्ध करने में व्यतीत हुआ। पर उसे सफलता नहीं हुई और आखिर सन १३५१ में बीमारी द्वारा उसकी मृत्यु हो गई।

फीरोजशाह——मुहम्मद तुगलक के बाद उसका चचेरा भाई फीरोजशाह राजगद्दी पर बैठा। उसने सन १३५१ से १३८८ तक राज्य किया। फीरोजशाह कट्टर मुसलमान था। वह स्वभाव का उत्तम और दयालु था। देश की भलाई के लिए उसने बहुत से कार्य किए। उसने अनेक विद्यालय और अस्पताल खोले। कृषि की उन्नति के लिए नहरें खुदवाई, कुएँ और पुल बनवाए। जमुना की नहर फीरोजशाह की ही निकाली हुई है। उसने दीन और ग़रीब लोगों के लिए अनेक भोजनालय भी बनवाए थे, जहां उन्हें मुफ्त भोजन मिलता था।

फीरोजशाह ने शासन में भी अनेक सुधार किए। कृषकों के ऊपर टैक्स का बोझ हलका किया गया। बहुत से टैक्स बिलकुल हटा दिए गए। दण्ड-विधान को भी बहुत नरम किया गया। पर जहां फीरोजशाह इतना दयालु और परोपकारी सुलतान था, वहां धार्मिक कट्टरता और धर्मान्धता ने उससे बहुत से अनर्थ भी करवाए। वह धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं से द्वेष रखता था। उसने "काफ़िरों" को इस्लाम का अनुयायी बनाने के लिए बहुत से उपाय किए। जज़िया को बड़ी कठोरता के साथ लगाया गया। जज़िया एक कर होता था, जो उन लोगों से लिया जाता था, जो इस्लाम के अनुयायी न हों। ब्राह्मण पहले इस कर से मुक्त थे, पर फीरोजशाह ने अब ब्राह्मणों से भी यह कर वसूल करना शुरू किया।

मुहम्मद तुगलक के अन्तिम वर्षों में अफ़ग़ान साम्राज्य की अधीनता से जो प्रदेश मुक्त हो गए थे, उन्हें फिर से अधीन करने का कोई विशेष उद्योग फीरोशाह ने नहीं किया। उसने बंगाल आदि पर कुछ हमले किए भी, पर उसे उनमें सफलता प्राप्त नहीं हो सके।

———

बाईसवां अध्याय

राजपूतों और अफ़गानों के विविध राज्य

अफ़गान साम्राज्य के पतन के बाद भारत में फिर बहुत से राज्य क़ायम हो गए। राजपूत राजाओं ने स्वतन्त्र हो कर अपनी शक्ति का विस्तार शुरू किया और बहुत से प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार अनेक अफ़गान सूबेदार स्वतन्त्र हो गए और उन्होंने अपने पृथक् राजवंशों का प्रारम्भ किया।

मेवाड़—राजपूत राजाओं में मेवाड़ के सूर्यवंशी राजा सब से प्रतिष्ठित तथा शक्तिशाली थे। खिलजी और तुग़लक वंश के अफ़गान सुल्तानों ने अनेक बार मेवाड़ को अपने अधीन करना चाहा, पर उन्हें पूर्ण सफलता कभी नहीं हुई। उन्होंने मेवाड़ के दुर्गों पर तो कब्ज़ा कर लिया, पर मेवाड़ की भूमि और निवासियों पर उनका अधिकार कभी स्थापित नहीं हुआ। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कुछ वर्ष बाद ही राणा हम्मीर ने अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया, और रणथम्भोर तथा चित्तौड़ को स्वतन्त्र करा लिया। धीरे-धीरे राणा हम्मीर ने अपना राज्य बहुत विस्तृत कर लिया और मारवाड़, जयपुर, बून्दी, ग्वालियर, चन्देरी, सीकरी, कालपी, आबू आदि के राजाओं ने मेवाड़ के राणा को अपना महाराज स्वीकार कर लिया। हम्मीर के बाद मेवाड़ की निरन्तर उन्नति ही होती गई। उधर अफ़गान साम्राज्य की शक्ति कमज़ोर पड़ रही थी। उस से लाभ उठा कर मेवाड़ के राणाओं ने अपनी शक्ति को खूब बढ़ाया। सन १४१८ में राणा कुम्भा मेवाड़ की

राजगद्दी पर बैठे। वे बड़े प्रतापी राणा हुए हैं। जब मालवा और गुजरात के अफ़गान सुलतानों ने मिल कर मेवाड़ पर आक्रमण किया, तो राणा कुम्भा ने एक लाख घुड़सवार सेना लेकर उनका मुक़ाबला किया और दोनों को एक साथ परास्त किया। मालवा का सुल्तान महमूद खिलजी तो उन के हाथ क़ैद भी हो गया, पर उदारतावश उन्होंने उसे छोड़ दिया। इस विजय की स्मृति में चित्तौड़ में उन्होंने एक शानदार विजयस्तम्भ का निर्माण किया, जो राजपूताना की सर्वोत्तम इमारतों में गिना जाता है। राणा खुम्भा की रानी मीराबाई थी, जो अपनी भक्ति, प्रेम तथा वात्सल्य के गीतों के कारण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान रखती है। उसके गीत सारे भारत में गाए जाते हैं।

राणा सांगा—मेवाड़ के राजवंश में सब से प्रसिद्ध राणा सांगा या संग्रामसिंह थे, जो सन १५०८ में राजगद्दी पर बैठे। सांगा के शासन काल में मेवाड़ उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। मारवाड़ तथा अम्बर के राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की और ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, चन्देरी आदि विविध राजपूत राज्य उन्हें 'कर' देने लगे। सारा राजपूताना उनके अधीन हो गया। पर राणा संग्रामसिंह इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए। उनकी आकांक्षा यह थी कि अफ़गानों को परास्त कर दिल्ली में फिर राजपूत राज्य की स्थापना की जावे। इसी लिए उन्होंने अफ़गान सुल्तानों के साथ युद्ध शुरू किए। मालवा तथा दिल्ली के अफ़गान सुल्तानों के साथ उनके अठारह युद्ध हुए, इन सब में राणा सांगा की विजय हुई। राणा सांगा अवश्य ही अपने मनोरथ में सफल हो जाते और दिल्ली में अपना राज्य स्थापित कर लेते, यदि मुगल आक्रान्ता बाबर भारत पर आक्रमण न करता। बाबर ने जहां दिल्ली के अफ़गान सुल्तान को परास्त किया, वहां राणा सांगा

के साथ भी उसकी भारी लड़ाई हुई। बाबर के हमले के समय भारत की प्रधान शक्ति दिल्ली के अफ़गान सुल्तान नहीं थे, उस समय का सब से शक्तिशाली राजा सांगा था। सांगा को परास्त करके ही बाबर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाल सका।

अफ़गान राज्य—अफ़गान साम्राज्य के पतन के समय विविध अफ़गान सरदारों ने जो स्वतन्त्र राज्य क़ायम किए थे, उनमें बंगाल, जौनपुर, मालवा और गुजरात के राज्य सब से प्रसिद्ध हैं। फीरोज़शाह तुगलक के राजगद्दी पर बैठने से पहले ही बंगाल दिल्ली के साम्राज्य से पृथक् हो गया था। वहां के हुसैनी वंश के सुल्तान बहुत योग्य और कुशल शासक थे। जौनपुर नगर की स्थापना फीरोजशाह तुगलक ने अपने भाई मुहम्मद तुगलक (जूना) के नाम पर की थी। आगे चल कर इसके स्वतन्त्र सुल्तान बड़े शक्तिशाली हुए। इनमें सब से अधिक प्रसिद्ध सुल्तान इब्राहीमशाह हुआ है। वह कला और साहित्य का बड़ा प्रमी था। उसके समय में जौनपुर मुसलिम शिक्षा का बड़ा भारी केन्द्र बन गया। जौनपुर में बहुत-सी इमारतें इब्राहीमशाह ने बनवाईं, जो अपने समय की सब से बढ़िया इमारतों में गिनी जाती हैं और अफ़गान काल की कला का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। गुजरात के सुल्तानों में सब से प्रसिद्ध अहमदशाह हुआ है, जो सन १४११ में राजगद्दी पर बैठा। गुजरात का सब से बड़ा नगर अहमदाबाद उसी ने बसाया था। मालवा में खिलजी वंश के सुल्तानों ने अपना राज्य स्थापित किया था। उनकी राजधानी माण्डू थी। मालवा और गुजरात के राजा जहां आपस में युद्ध करते रहते थे वहां राजपूत राज्यों को जीतने के लिए भी प्रयत्नशील रहते थे।

बहमनी राज्य—मुहम्मद तुगलक के समय में जब दक्षिणी भारत अफगान साम्राज्य से पृथक् हुआ, तो वहां दो स्वतन्त्र राज्य कायम हुए। बहमनी राज्य और विजयनगर का राज्य। बहमनी राज्य का संस्थापक हसन गंगू था। हसन गंगू पहले बहुत छोटी हैसियत का आदमी था, पर अपनी योग्यता और शक्ति के बल पर उन्नति करते-करते वह तुगलक साम्राज्य में एक ऊँचे पद पर पहुँच गया था। अवसर मिलने पर उसने दक्षिण में अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया। उसकी राजधानी गुलवर्गा थी। बहमनी वंश के राजा बड़े शक्तिशाली हुए हैं। उनके विजयनगर के साथ निरन्तर युद्ध होते रहते थे।

विजयनगर—विजयनगर साम्राज्य का संस्थापक हरिहर था। सुदूर दक्षिण में तुंगभद्रा नदी से लेकर कुमारी अन्तरीप तक यह साम्राज्य विस्तृत था। इसकी शक्ति के कारण मुसलमान लोग तुंगभद्रा नदी से दक्षिण की ओर अपना शासन स्थापित नहीं कर सके। विजयनगर के हिन्दू सम्राट बहमनी राज्य से निरन्तर युद्ध करते रहते थे। विजयनगर का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा कृष्णदास (१५०६-१५३०) था। उसने अपने पड़ौसी मुसलमान राजाओं को अनेक युद्धों में हराया। विजयनगर में हिन्दुओं की विद्या और कला की बहुत उन्नति हुई। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी का नाम विजयनगर ही था। वह ६० मील के घेरे में बसी हुई थी। उसकी इमारतें बहुत सुन्दर तथा शानदार थीं। अपने समय के सब से बड़े शहरों में उसकी गिनती की जाती थी। विजयनगर व्यापार का भी बड़ा भारी केन्द्र था। इस साम्राज्य का शासन प्राचीन हिन्दू राजशास्त्र के अनुसार किया जाता था। जिस समय शेष भारत के शासन में हिन्दू राजशास्त्र के सिद्धान्त लुप्त हो गये थे, उस समय विजयनगर में वे सिद्धान्त जीवित-जागृत

रूप में विद्यमान थे। विजयनगर साम्राज्य में संस्कृत-साहित्य की भी बहुत उन्नति हुई। वेदों का प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य विजयनगर का ही रहने वाला था। उसका भाई माधव विजयनगर का प्रधानमन्त्री और सेनापति था। सायणाचार्य भी स्वयं राज्य में ऊँचे पद पर रह चुका था।

बहमनी राज्य का अन्त—बहमनी राज्य बहुत देर तक कायम नहीं रह सका। पन्द्रवीं सदी के मध्य भाग में वह टुकड़ों में विभक्त होना शुरू हुआ और अन्त में बहमनी राज्य के खँडहरों पर पांच नवीन राज्यों की उत्पत्ति हुई। इनके नाम निम्न-लिखित हैं—

१—अहमदनगर का निज़ामशाही राज्य।

२—बीजापुर का आदिलशाही राज्य।

३—गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य।

४—बीदर का बरीदशाही राज्य।

५—बरार का इमादशाही राज्य।

ये पांचों राज्य भी आपस में युद्ध करते रहते थे। जब दिल्ली के मुगल बादशाहों ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण शुरू किए, तो उन्हें इन्हीं राज्यों को नष्ट करना पड़ा।

तेईसवां अध्याय

अफ़ग़ान साम्राज्य का पतन

फ़ीरोजशाह तुगलक की मृत्यु सन १६६८ में हुई। उस के उत्तराधिकारी और भी अधिक कमज़ोर थे। उन के समय में अफ़गान साम्राज्य निरन्तर क्षीण होता गया। दक्षिण और बंगाल तो पहले ही स्वतन्त्र हो चुके थे। अब राजपूत राजा भी स्वतन्त्र हो गये। अफ़गान सूबेदारों ने भी सुल्तानों की उपेक्षा कर स्वतन्त्ररूप से शासन शुरू कर दिया।

तैमूर का आक्रमण—जिस समय दिल्ली की अफ़गान सल्तनत की यह दुर्दशा थी, उसी समय सन १३६८ में तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। तैमूर बहुत बड़ा विजेता और साम्राज्यनिर्माता हुआ है। उस ने मध्य एशिया में एक शक्ति-शाली साम्राज्य की स्थापना की थी। भारत की अस्तव्यस्त दशा को देख कर उस ने यहां भी आक्रमण करने का विचार किया और एक लाख के लगभग चुने हुए घुड़सवारों को साथ लेकर भारत की तरफ प्रस्थान किया। मुलतान, दीपालपुर, भटनीर आदि के दुर्गों को जीतता हुआ वह दिल्ली के समीप तक आ पहुँचा। रास्ते में उस ने लोगों पर भयंकर अत्याचार किये। सैकड़ों नगर और गांव नष्ट कर दिये गये। लाखों आदमी कत्ल हुए और लाखों कैद कर लिये गये। दिल्ली के पास पहुँच कर उस ने एक लाख कैदियों को कत्ल करवा दिया, ताकि युद्ध के समय वे शत्रुओं के साथ न मिल जावें। दिल्ली में उस समय महमूद तुगलक राज्य करता था। उस ने सेना इकट्ठी कर दिल्ली

के बाहर तैमूर का मुकाबला किया। पर तैमूर को परास्त कर सकना सुगम बात न थी। महमूद हार गया और तैमूर ने विजेता के रूप में दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली में आकर तैमूर ने खूब लूट मचाई। कत्लेआम का हुक्म दिया गया। पांच दिन तक निरन्तर दिल्ली की लूट जारी रही। दिल्ली में जो कुछ भी कीमती सामान था, सब को लूट कर तैमूर अपनी राजधानी समरकन्द को वापस लौट गया।

तैमूर के इस आक्रमण से अफ़गान सल्तनत जड़ से हिल गई। उस में जो शक्ति शेष थी, वह भी नष्ट हो गई। तैमूर ने भारत में स्थिररूप से शासन करने का प्रयत्न नहीं किया। वह आंधी के समान आया और अफ़गान साम्राज्य को तहस-नहस कर अपने देश को वापस लौट गया। अब अफ़गान साम्राज्य केवल दिल्ली, आगरा और उन के आसपास के प्रदेशों तक ही सीमित रह गया। शेष सारे भारत में हिन्दू राजा या अफ़गान सरदार स्वतन्त्ररूप से शासन करने लगे।

सैयद वंश—महमूद तुगलक वंश का अन्तिम सुलतान था। उसने सन १४१४ तक राज्य किया। उसके बाद मुल्तान के सूबेदार सैयद खिज़र खां ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया। खिज़रखां जाति का सैयद था, अतः उसे और उस के उत्तराधिकारियों को सैयद वंश का कहा जाता है। सैयद वंश ने १४१४ से १४५१ तक राज्य किया। सैयद वंश के ये सुल्तान बहुत निर्बल थे। उन का राज्य दिल्ली, आगरा तथा उन के समीपवर्ती प्रदेशों तक ही रह गया था।

लोदी वंश—सन १४५१ में बहलोलखां लोदी ने दिल्ली की राजगद्दी पर अपना अधिकार कायम कर लिया। यह बहलोल अच्छा शक्तिशाली राजा हुआ है। उस ने अपने ३८ वर्ष के

शासनकाल में दिल्ली की राजगद्दी की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः संजीवित करने के लिये बहुत प्रयत्न किया। आसपास के अनेक राज्यों को जीत कर उस ने उन्हें अपने अधीन भी किया।

बहलोलखां का पुत्र सिकन्दर लोदी भी अपने पिता के समान वीर और साहसी था। उस के प्रयत्नों से दिल्ली की सल्तनत पूर्व में बिहार और तिरहुत तक फैल गई थी। दक्षिण में ग्वालियर को भी उसने जीत लिया था।

लोदी वंश का अन्तिम सुल्तान इब्राहीम था। उस के समय में प्रसिद्ध मुगल आक्रान्ता बाबर ने आक्रमण किया और अफ़गान साम्राज्य का अन्त कर मुगल साम्राज्य की नींव डाली। बाबर सन १५२६ में भारत में प्रविष्ट हुआ था।

अफ़गान शासन में जनता की दशा—जिस समय भारत में अफ़गान सुल्तान राज्य कर रहे थे, तब सर्वसाधारण जनता की क्या दशा थी? अफ़गान सुलतानों के शासन का प्रभाव सर्वसाधारण लोगों पर बहुत कम पड़ा। भारत की अधिकांश जनता तब ग्रामों में निवास करती थी। प्रत्येक गांव की अपनी अलग पंचायत थी। गांव के साथ सम्बन्ध रखने वाले सब मामलों का निर्णय पंचायतों द्वारा होता था। दिल्ली में किस सुल्तान का राज्य है, सुल्तान के खिलाफ़ कौन-सी साजिशें हो रही हैं, सुल्तान की किस सरदार पर कृपा है, किस सरदार ने विद्रोह कर दिया है,—इन सब बातों के साथ सर्वसाधारण लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं था। वे तो आनन्द के साथ अपने गांवों में निवास करते थे। जो कोई भी राजा हो, उसे ग्राम की तरफ़ से कर दे दिया जाता था। वह राजा गुर्जर-प्रतिहार वंश का है, या खिलजी वंश का—इस बात से उन्हें क्या मतलब था। इस में शक नहीं कि विदेशी सेनाओं के आक्रमण के समय बहुत से लोग कतल होते थे,

बहुतों को अन्य मुसीबतों का सामना भी करना पड़ता था—पर इन का प्रभाव बहुत कम लोगों पर ही पड़ता था। अफ़गान सुल्तानों ने भारत की ग्राम पंचायतों में हस्ताक्षेप करने का प्रयत्न नहीं किया। भूमि तथा उस के टैक्स के सम्बन्ध में जो प्राचीन परिपाटी चली आती थी, उस में उन्होंने कोई बड़े परिवतन नहीं किये। इन बातों की उन्हें फ़ुरसत ही कहां थी। दो तीन सुल्तानों ने इस के लिये प्रयत्न भी किया, पर जनता की दशा में वे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सके।

—:—:—

चौबीसवां अध्याय

नवीन धार्मिक आन्दोलन

भारतवर्ष में जिन तुर्क और अफगान जातियों ने प्रवेश किया था, वे मुसलमान धर्म को मानने वाली थीं। इससे पूर्व भी भारत में अनेक विदेशी जातियां प्रविष्ट होती रही थीं। शीघ्र ही उन्होंने भारत के धर्म, सभ्यता और भाषा को स्वीकार कर लिया था। पर इस बार जो नवीन जातियां भारत में आई थीं। उन्होंने कुछ समय पूर्व ही अरब लोगों के संसर्ग में आकर इस्लाम को अपनाया था। उनमें धार्मिक कट्टरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि उस समय इस्लाम में जीवन, स्फूर्ति और उत्साह बहुत अधिक था। भारत के धर्म में बहुत से बिगाड़ आ चुके थे। जातपात के भेद बहुत बढ़ गये थे। लोगों में मिथ्याभिमान और संकीर्णता बहुत अधिक थी। इन बातों का परिणाम यह हुआ कि तुर्क और अफ़गान उस प्रकार भारतीय धर्म और सभ्यता को नहीं अपना सके, जैसे पहले शकों और कुशानों ने उसे अपना लिया था। पर फिर भी यह असम्भव था कि इन विदेशी आक्रान्ताओं पर भारत का कोई असर न पड़े। तुर्कों और अफगानों के साथ भारत में बहुत कम स्त्रियां आई थीं। उन्होंने अपने विवाह प्रायः भारतीय स्त्रियों के साथ ही किये थे। यद्यपि इन स्त्रियों को मुसलमान बना लिया गया था, पर धर्मपरिवर्तन द्वारा उनके स्वभाव, विश्वास और रीतिरिवाज में परिवर्तन आ जाना सम्भव नहीं था। इस कारण भारतीय विश्वास और रीतिरिवाज मुसलमान परिवारों में भी

प्रवेश पाने लगे। जो हिन्दू मुसलमान बने, उन्होंने अपनी प्रथाओं को बहुत अंशों में कायम रखा। यही कारण है कि भारत का इस्लाम अरब और पर्शिया के इस्लाम से बहुत भिन्न हो गया।

नवीन धार्मिक आन्दोलन—मुसलमानों के संसर्ग से हिन्दुओं को अपनी दुर्दशा का ज्ञान हुआ। उनके धर्म में जो बहुत-सी खराबियां आ चुकी थीं, उनमें सुधार करने के लिये अनेक धार्मिक सुधारक उत्पन्न हुए। वर्तमान समय में हिन्दू धर्म का जो स्वरूप है, उसका निर्माण मुख्यतया पन्द्रहवीं सदी के धार्मिक-सुधारणा के आन्दोलन द्वारा हुआ था। पन्द्रहवीं सदी का भारत के धार्मिक इतिहास में वही महत्व है, जो ईसा से पूर्व छटी सदी का था, जब कि यहां महात्मा बुद्ध और महावीर उत्पन्न हुए थे।

रामानन्द—इस धार्मिक आन्दोलन के सब से बड़े नेता स्वामी रामानन्द थे, उन्होंने चौदहवीं सदी के उत्तरार्ध में अपना कार्य किया। रामानन्द काशी के रहने वाले थे। पर उन्होंने सारे उत्तरीय भारत में घूम-घूम कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वे जातपात के सख्त खिलाफ़ थे। ये अपनी शिष्य मण्डली में ऊँच-नीच का कोई भेद न कर सब जातियों के लोगों को एक समान स्थान देते थे। उनके बारह प्रधान शिष्यों में एक नाई, एक चमार और एक जुलाहा था। रामानन्द ने अपने धर्म के लिए संस्कृत का परित्याग कर हिन्दी को अपनाया, जो उस समय सर्वसाधारण लोगों की भाषा थी। यही कारण है कि उनके धर्म का जनता में बहुत प्रचार हुआ। वे राम को ईश्वर का अवतार मान कर उनकी भक्ति पर ज़ोर देते थे। वैष्णव धर्म का वर्तमान रूप रामानन्द द्वारा ही चलाया हुआ है।

कबीर—स्वामी रामानन्द के शिष्यों में सब से प्रसिद्ध कबीर हुए। वे जाति के जुलाहे थे। उन्होंने अपने गीतों द्वारा सम्पूर्ण उत्तरी भारत में नवजीवन का संचार किया। जाति-पांति के वे बहुत विरुद्ध थे। हिन्दुओं की विविध जातियों में तो क्या, वे तो हिन्दू और मुसलमान में भी कोई भेद न मानते थे।

चैतन्य—चैतन्य महाप्रभु बंगाल में नवद्वीप के रहने वाले थे। उनका जन्म सन १४८५ में हुआ था। पच्चीस वर्ष की आयु में उन्होंने सांसारिक जीवन का परित्याग कर भक्तिवाद का प्रचार करना शुरू किया। उनका कहना था कि कृष्ण के उपासक किसी भी जाति के क्यों न हो, सब एक समान हैं। उनमें भेद भाव न होना चाहिये। उनकी दृष्टि में हिन्दू, मुसलमान, चमार, भंगी—सब एक थे। चैतन्य के उपदेशों का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बंगाल और उड़ीसा में उनके बहुत से अनुयायी पाये जाते हैं।

वल्लभाचार्य—वल्लभ स्वामी दक्षिणी भारत के रहने वाले थे। उनका जन्म सन १४७६ में हुआ था। बचपन में ही उन्होंने वेद शास्त्रों को पढ़ कर पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था। वे कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते थे और उसी की भक्ति को मोक्षप्राप्ति का साधन समझते थे। जिस प्रकार स्वामी रामानन्द ने राम और सीता की उपासना प्रारम्भ की, उसी प्रकार वल्लभ स्वामी ने कृष्ण और राधा की भक्ति का प्रचार किया। वल्लभ स्वामी विविध प्रकार की तपस्याओं को निरर्थक मानते थे और संसार के सुखों से घृणा न करते हुए सच्ची भक्ति को ही मोक्ष का उपाय मानते थे।

नानक—गुरु नानक पंजाब के रहने वाले थे। उनका जन्म सन १४६६ में तलवण्डी नामक स्थान पर हुआ था। सिक्ख धर्म

के संस्थापक गुरु नानक ही हुए हैं। उन्होंने बहुत सरल रीति से एक ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया। वे धर्मों और सम्प्रदायों के भेद को निरर्थक समझते थे और सब लोगों में परस्पर मेल कराना चाहते थे। हिन्दू और मुसलमान सब उनका समान-रूप से आदर करते थे। अनेक मुसलमान भी उनके शिष्य हुए। नानक की शिक्षाओं से पंजाब की धार्मिक दशा में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया।

पन्द्रहवीं सदी के इन विविध धार्मिक सुधारकों के कारण हिन्दू धर्म में बड़ी भारी क्रान्ति हुई। एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारे हिन्दू संसार में नवीन जीवन का सञ्चार हुआ। मुसलमान लोग भी धार्मिक क्रान्ति के इस प्रवाह से नहीं बच सके। रसखान, रहीम आदि मुसलमानों में भी अनेक ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए, जो राम और कृष्ण के भक्त थे।

—:—:—

पच्चीसवां अध्याय

मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ

हम पहले चंगेज़खां के मंगोल साम्राज्य और मंगोल लोगों के भारत पर किये गये हमलों का ज़िक्र कर चुके हैं। मंगोल और मुगल एक ही बात है। चंगेज़खां ने चीन से लेकर यूरोप तक एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था। पर दुनियां के अन्य साम्राज्यों के समान मंगोल साम्राज्य भी देर तक कायम नहीं रहा और उसके अनेक टुकड़े हो गये।

बाबर—चंगेज़खां के साम्राज्य के टूटने पर जो बहुत से छोटे-छोटे राज्य कायम हुए, उनमें फरगाना का राज्य एक था। बाबर इसी राज्य का स्वामी था। पर अन्य निकट सम्बन्धी उस का विरोध करते थे। उसका सारा प्रारम्भिक जीवन अपने सम्बन्धियों के साथ लड़ने में व्यतीत हुआ। वह फरगाना में अपना पैतृक राज्य प्राप्त करना चाहता था। पर दस वर्ष तक निरंतर लड़ने के बाद भी उसे सफलता न मिली। अन्त में निराश होकर उसने दक्षिण की तरफ प्रस्थान किया और हिन्दुकुश पर्वत पार कर काबुल को जीत लिया।

इस समय भारत की राजनीतिक दशा बहुत खराब थी। दिल्ली का सुल्तान इब्राहीम लोदी बहुत निर्बल और अत्याचारी था। अफगान सरदार उससे सख्त नाराज़ थे। उन दिनों पंजाब का सूबेदार दौलतखां था, इब्राहीम ने दौलतखां के पुत्र दिलावरखां के साथ बड़ी क्रूरता का बरताव किया। इस पर दौलतखां इब्राहीम से नाराज़ हो गया और उस ने बाबर के पास भारत पर

आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण भेजा। बाबर को और क्या चाहिए था? वह तो अपना राज्य बढ़ाने के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बारह हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर भारत की ओर प्रस्थान किया।

पानीपत का युद्ध—जब इब्राहीम लोदी ने बाबर के आक्रमण का हाल सुना तो वह अपनी सेना लेकर उसका मुक़ाबला करने के लिए आगे बढ़ा। पानीपत के रणक्षेत्र में २१ एप्रिल सन १५२६ को बाबर और इब्राहीम की सेनाओं में भारी युद्ध हुआ। अफ़गान लोगों की शक्ति अब तक बहुत मन्द हो चुकी थी। आपस के ईर्षा द्वेष और इब्राहीम के उच्छृङ्खल बर्ताव के कारण उनमें एकता भी नहीं रही थी। लड़ाई में इब्राहीम हार गया और बाबर ने विजेता के रूप में दिल्ली में प्रवेश किया।

राजपूतों से युद्ध—पानीपत की लड़ाई के बाद दिल्ली और आगरा बाबर के हाथ में आ गये। पर भारत की प्रधान शक्ति इस समय अफ़गान सल्तनत नहीं थी। राणा सांगा इस समय भारत के सब से बड़े शक्तिशाली राजा थे। बाबर तब तक अपने को भारत का विजेता नहीं समझ सकता था, जब तक राणा सांगा को परास्त न कर दे। सांगा भी बाबर को हरा कर भारत से बाहर निकाल देने के लिये उत्सुक था, क्योंकि वह स्वयं दिल्ली पर अधिकार स्थापित कर भारत का सम्राट् बनना चाहता था। उस ने बाबर के साथ युद्ध करने के लिये बड़ी भारी तैयारी की। सब राजपूत राजाओं को सहायता के लिए निमन्त्रण दिया गया। राजपूत राजाओं ने बड़े उत्साह से अपने अधिपति राणा-सांगा का साथ दिया। बहुत से अफ़गान सरदार भी बाबर को परास्त करने के लिये सांगा के साथ आ मिले। सांगा की अधीनता में जो बड़ी भारी सेना इस समय इकट्ठी हुई थी, उस में

८० हज़ार घुड़सवार और बहुत से पदाति थे। इस सेना ने बाबर का मुक़ाबला करने के लिये आगरे की तरफ प्रस्थान किया। राजपूतों की इस विशाल सेना को देखकर बाबर बहुत घबराया। उसके सिपाही तो खुल्लमखुल्ला विद्रोह के लिये तैयार हो गये। पर बाबर का सारा जीवन विपत्तियों के साथ संघर्ष में व्यतीत हुआ था। उसे वीरतापूर्वक मुसीबतों का सामना करने की आदत पड़ गई थी। इस समय भी उसने धैर्य के साथ काम लिया।

सीकरी के पास १६ मार्च सन १५२७ को बाबर और सांगा की सेनाओं में बड़ी घमासान लड़ाई हुई। भाग्य ने बाबर का साथ दिया। राणा सांगा की पराजय हुई। बाबर की इन सफलताओं का मुख्य कारण यह है कि वह युद्ध में तोपों का प्रयोग करता था। बारूद और तोप का उपयोग सब से पहले मंगोल लोगों ने शुरू किया था। उस समय एशिया व यूरोप के आम लोग तोपों का प्रयोग नहीं जानते थे। पानीपत और सीकरी के रणक्षेत्र में बाबर की सफलता का मुख्य कारण ये तोपें ही थीं।

बाबर सीकरी के रणक्षेत्र में ही राजपूतों को परास्त कर के संतुष्ट नहीं हो गया। वह उनकी शक्ति को पूरी तरह तोड़ देना चाहता था। उन दिनों राजपूताने में चंदेरी का दुर्ग बहुत प्रसिद्ध था। वह प्रसिद्ध वीर मेदिनीराय के अधिकार में था। बाबर ने चन्देरी पर आक्रमण किया। राजपूतों ने बड़ी वीरता के साथ उसका मुक़ाबला किया। पर बाबर को परास्त कर सकना उन के लिए सम्भव नहीं था। आखिर, राजपूत स्त्रियों ने जौहर व्रत कर अपने को स्वाहा कर दिया और राजपूत वीरों ने मुग़लों का मुक़ाबला करते हुए एक-एक कर के अपने प्राण दे दिए। चन्देरी पर बाबर का अधिकार हो गया।

बंगाल और बिहार की विजय—अब बाबर दिल्ली की

अफ़गान सल्तनत और राजपूतों को भलीभांति परास्त कर चुका था। शेष उत्तरी भारत को जीत सकना कठिन नहीं था। उस ने बिहार और बंगाल को जीतनें के लिए पूर्व की तरफ़ प्रस्थान किया। पटना के उत्तर की ओर घाघरा नदी के किनारे पर बिहार और बंगाल के अफ़गानों को उसने बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध के बाद सारे उत्तरीय भारत पर बाबर का राज्य स्थापित हो गया।

बाबर की मृत्यु—बाबर का सम्पूर्ण जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ। वह अपने जीते हुए प्रदेशों के शासन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। सन १५३० में उसकी मृत्यु हो गई। बाबर जहां महान् योद्धा और वीर सेनापति था, वहां साथ ही साहित्य और कला से भी उसे बहुत प्रेम था। वह स्वयं अच्छा निपुण लेखक था। उसने अपने जीवन की घटनाएँ बड़ी सुन्दर भाषा में लिखी हैं। उसके स्वलिखित जीवनचरित्र को लोग अब भी बड़े शौक से पढ़ते हैं। वह तुर्की भाषा का अच्छा कवि भी था। प्राकृतिक सौन्दर्य से उसे बहुत प्रेम था।

मरने के समय बाबर का साम्राज्य पश्चिम में आमू नदी से लेकर बंगाल की खाड़ी तक, उत्तर में हिमालय तक और दक्षिण में मालवा तक फैला हुआ था।

हुमायूँ—बाबर के बाद उसका बड़ा लड़का हुमायूँ राजगद्दी पर बैठा। हुमायूँ के तीन भाई और थे, कामरान, हिन्दाल और मिर्ज़ा अस्करी। मरते समय बाबर ने हुमायूँ को आदेश दिया था कि तुम अपने भाइयों के साथ दया और प्रेम का वर्ताव करना। हुमायूँ ने पिता के इस आदेश का जन्म भर पालन किया। बाबर की मृत्यु के समय कामरान काबुल का सूबेदार था। हुमायूँ ने उसे अपने पद से हटाया नहीं। यह उसकी भारी

ग़लती थी। कारण यह कि भारत में मुगल लोग बहुत थोड़ी संख्या में थे। यहां के अफगान और राजपूत उनके जानी दुश्मन थे। हुमायूँ इनका मुकाबला तभी सफलता के साथ कर सकता था, जब काबुल तथा अन्य पश्चिमीय देशों से उसका सम्बन्ध बना रहे, और वहां के मुगल उसकी सहायता के लिए आते रहें कामरान ने काबुल में अपने को स्वतन्त्र बना लिया था, इसलिए हुमायूँ का पश्चिमीय देशों से सम्बन्ध टूट गया और वह अपनी शक्ति के लिए केवल उसी मुगल सेना पर आश्रित रह गया, जो उसके साथ थी।

भारत के ऊपर शासन करना हुमायूँ के लिए आसान बात न थी। राजपूत राजा लड़ाई में अनेक बार परास्त होकर भी अधीनता में नहीं आते थे। मौका पाते ही वे स्वतन्त्र होजाते थे। अब बाबर की मृत्यु के बाद चित्तौड़ के राणा नें फिर बल पकड़ा। उधर अफ़गान सरदार भी इस बात को भूले न थे कि अब से कुछ साल पहले भारत में उन्हीं का शासन था। वे हुमायूँ के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए मौके की प्रतीक्षा में थे।

गुजरात की विजय—हुमायूँ के विरुद्ध सब से पहले बिहार में शेरखां नामक अफगान सरदार ने विद्रोह किया। अभी उसे भलीभांति परास्त नहीं किया गया था कि उसे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के हमले का समाचार मिला। गुजरात के स्वतन्त्र अफ़गान राज्य को बाबर ने अपने अधीन नहीं किया था। वहां का सुल्तान बहादुरशाह बड़ा पराक्रमी था। उसनें खानदेश, बरार, अहमदनगर और मालवा के राज्यों को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। उसकी इच्छा थी कि उत्तरी भारत में भी अपना आधिपत्य स्थापित किया जावे। इसके लिए वह अन्य अफगान सरदारों के साथ मिल कर बड़ा भारी षड्यन्त्र

तैयार कर रहा था। कुछ मुगल सरदार भी हुमायूँ से असन्तुष्ट होकर उसके पास आए थे। वे भी उसे भड़का रहे थे। जब हुमायूँ ने बहादुरशाह की तैयारी का हाल सुना, तो शीघ्रता से गुजरात पर हमला किया। बहादुरशाह परास्त होकर भाग गया और गुजरात पर भी हुमायूँ का कब्ज़ा हो गया।

शेरखां के साथ युद्ध––पर इस बीच में शेरखां को अपनी शक्ति बढ़ाने का अच्छा अवसर हाथ लग गया। उसने एक-एक करके बिहार के सब किले जीत लिए और पूर्वीय भारत में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए, पूरी-पूरी तैयारी कर ली। शेरखां बिहार प्रान्त में सहसराम का जागीरदार था। वह बचपन से ही बड़ा होनहार और साहसी था। सन १५२८ में बाबर से उसकी भेंट हुई और बाबर ने उसके गुणों पर मुग्ध हो उसे अपनी सेना में ले लिया। धीरे-धीरे उसने अच्छी उन्नति कर ली। वह बिहार में एक अच्छे ओहदे पर नियत था। हुमायूँ के राजगद्दी पर बैठते ही उसने विद्रोह किया। पर तब उसे सफलता नहीं मिली। जब हमायूं गुजरात को जीतने में लगा हुआ था, तो उसे अपनी उन्नति का अच्छा मौका मिला और उसने उसका भली भांति उपयोग किया। हमायूँ ने जब शेरखां के विद्रोह का समाचार सुना, तो एक बहुत बड़ी सेना लेकर पूर्व की ओर प्रस्थान किया। शेरखां हमायूँ की शक्ति से भली भांति परिचित था। वह जानता था कि सम्मुख युद्ध में उसे परास्त कर सकना सम्भव नहीं है। इसलिए उसने नीति का आश्रय लिया। वह लगातार पीछे हटता चला गया। पूर्व का रास्ता खुला पड़ा था, कोई रुकावट न थी। हुमायूँ निरन्तर आगे बढ़ता गया। उसे अपनी सफलता की अपूर्व प्रसन्नता थी। वह पूर्वीय बंगाल तक आगे बढ़ता गया। इतने में वर्षा ऋतु

प्रारम्भ हो गई। बंगाल में वर्षा ऋतु बड़ी भयंकर होती है। सारी पृथिवी जलमय हो जाती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये नौका का आश्रय लेना पड़ता है। बरसात के कारण बीमारी भी खूब फैलती है। हुमायूँ की सेना बंगाल की बरसात में फँस गई। मुगल सिपाही, जो खुश्की के रहने वाले थे, बंगाल की बरसात से तंग आ गए। ऐसी दशा में शेरखां ने हुमायूँ पर आक्रमण करने प्रारम्भ किए। दिल्ली लौटने के सब रास्तों पर कब्जा कर लिया गया। दिल्ली से भी सहायता की आशा नहीं की सकती थी, क्योंकि वहां हुमायूँ के छोटे भाई हिन्दाल ने अपने को स्वतन्त्र बादशाह उद्घोषित कर लिया था। हुमायूँ बड़ी मुसीबत में पड़ा। उसने वापस लौटने का निश्चय किया, पर शेरखां की फौज उस पर हमला कर रही थी। बड़ी मुश्किल से वह अपने प्राण बचा कर वापस लौटा। उसकी प्रायः सारी सेना नष्ट हो गई।

कन्नौज का युद्ध—आगरा लौट कर हुमायूँ ने एक वार फिर शेरखां को परास्त करने के लिए तैयारी की। कन्नौज के समीप उनका आपस में युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूँ हार गया। यह युद्ध सन १५४० में लड़ा गया। इसके बाद हुमायूँ के लिए भारत में रहना कठिन हो गया। भारत का साम्राज्य उसके हाथ से निकल गया और उस पर शेरखां का अधिकार हो गया।

हुमायूं का भारत से प्रस्थान—कन्नौज से भाग कर हुमायूँ आगरा होता हुआ लाहौर पहुँचा। पंजाब उस समय कामरान के पास था। पर उसने शेरखां के डर से हुमायूँ को आश्रय नहीं दिया। निराश होकर हुमायूँ सिन्ध की ओर गया और वहां अमरकोट नामक स्थान पर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चल कर भारत का प्रसिद्ध साम्राट् बना। इस बालक का नाम

अकबर रखा गया। अमरकोट से हुमायूँ पहले कन्धार और फिर पर्शिया गया। पर्शिया के शाह तहमास्प ने उसे अपने पास आश्रय दिया और उसकी सहायता के लिये १२ हज़ार सवार प्रदान किए।

शेरशाह का शासन——हुमायूं को परास्त कर शेरखां के भारत में अफ़गान साम्राज्य का पुनरुद्धार किया। वह स्वयं शेरशाह के नाम से दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा। कुछ समय के लिए भारत से मुगलों का राज्य उठ गया। शेरशाह बड़ा शक्तिशाली सुल्तान हुआ है। उसने पञ्जाब, सिन्ध, और मालवा पर विजय प्राप्त की। राजपूतों के साथ भी उसके अनेक युद्ध हुए, पर इन्हें परास्त करने में वह पूरी तरह सफल नहीं हो सका। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तरीय भारत के प्रायः सभी प्रदेशों पर शेरशाह ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उसके समय में अफ़गान सुल्तान ने फिर पुरानी शान प्राप्त कर ली थी।

शेरशाह बहुत ही योग्य और बुद्धिमान शासक हुआ है। यदि वह अधिक देर जीवित रहता तो मुगल लोग भारत में पुनः प्रवेश न कर सकते। पर कन्नौज के युद्ध के पांच साल बाद सन १५४५ में उसकी मृत्यु होगई।

शेरशाह के सुधार—शेरशाह भारत के सब से बड़े साम्राटों में से एक था। सम्राट बनकर उसने शासन में बहुत से सुधार किए। अकबर के समय भारत में जो बहुत से सुधार हुए, उनका प्रारम्भ शेरशाह द्वारा ही किया गया था। साम्राज्य में व्यवस्था कायम रखने के लिए उसने पुरानी सड़कों की मरम्मत कराई और अनेक नई सड़कें भी बनवाईं। ग्रान्डट्रंक रोड, जो पेशावर से बंगाल तक जाती है, उसके समय में अच्छी हालत में विद्यमान् थी। सड़कों के किनारे शेरशाह ने बहुत-सी सरायें बनाईं, जिनमें

यात्रियोंके आराम के लिए सब सामान उपस्थित रहते थे। मालगुजारी वसूल करने के लिए शेरशाह ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। इस काम में उसका प्रधान सहायक राजा टोडरमल था, जो आगे चलकर अकबर का अर्थसचिव बना। टोडरमल ने ज़मीनों की पैमाइश कराके उपज के अनुसार उनकी मालगुजारी नियत की। पैदावार का तीसरा हिस्सा मालगुजारी में लने की व्यवस्था की गई। राजकर्मचारियों को हुक्म दिया गया कि वे किसानों के साथ ठीक बर्ताव करें, उन पर अत्याचार न करें। चोरों और डाकुओं को काबू में करने के लिए उसने गावों के मुखिया नियत किए और उन्हें अपने क्षेत्र में चोरी के लिए जिम्मेवार बनाया गया।

शेरशाह के उत्तराधिकारी—शेरशाह की मृत्यु के बाद सलीमशाह राजगद्दी पर बैठा। शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी सूरवंश के थे, इसी लिए उनके साथ 'सूरी' लगा रहता है। ये बहुत कमज़ोर तथा शासन के लिए अयोग्य थे। इनके समय में अफ़गान साम्राज्य के विविध प्रदेशों में फिर विद्रोह शुरु होगये।

हुमायूं का लौटना—इस बीच में हुमायूं शान्त नहीं बैठा था। पर्शिया के शाह तहमास्प की सहायता से उसने कान्धार और काबुल पर आक्रमण किया। कामरान ने उसका मुकाबला किया पर परास्त हो गया। अफगानिस्तान पर हमायूं का अधिकार स्थापित हो गया। जब उसने देखा कि भारत में शेरशाह की मृत्यु के बाद गड़बड़ शुरू होगई है, तो उसने एक बार फिर अपने भाग्य की परीक्षा लेने का निश्चय किया। सन १५५५ में पन्द्रह हज़ार सिपाहियों के साथ उसने भारत पर आक्रमण किया। सरहिन्द के समीप सूरवंश के सुल्तान सिकन्दर और हुमायूं में लड़ाई हुई।

सिकन्दर परास्त होकर भाग गया। दिल्ली और आगरा फिर हुमायूं के हाथ आगए।

हुमायूं का अन्त—एक बार फिर हुमायूं दिल्ली का बादशाह बन गया। पर उसका अन्त समय निकट आ चुका था। सन १५५६ में सीढ़ियों स फिसल पड़ने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

—:—:—

छब्बीसवां अध्याय

अकबर

हमायूं की मृत्यु के बाद उसका लड़का अकबर मुगल बादशाह बना। भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य का असली संस्थापक अकबर ही है। हमायूं ने सूर सुल्तानों का अन्त कर दिल्ली की राजगद्दी पर तो अधिकार कर लिया था, पर अधिकांश भारत उसके शासन में नहीं आया था। शेरशाह सूरी के बाद सूर वंश के कमज़ोर पड़ने पर भारत के विविध राजा फिर स्वतन्त्र हो गये थे। बंगाल, खानदेश, जौनपुर, सिन्ध, गुजरात आदि विविध प्रदेशों में स्वतन्त्र अफगान सुलतान राज्य करते थे। राजपूत राजाओं को तो जब मौका मिलता था, स्वतन्त्र हो जाते थे। इस समय भी वे सब स्वतन्त्र हो गए थे। मेवाड़, जोधपुर, जैसलमेर, जयपुर, कोटा आदि राजपूतों के अनेक स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य इस समय कायम थे। दक्षिण भारत तो स्वतन्त्र था ही। अकबर तब तक भारत का बादशाह नहीं बन सकता था, जब तक वह इन सब राज्यों को जीत कर अपने अधीन न कर लेता।

हेमूं *विक्रमादित्य*—इतना ही नहीं, सूर वंश के अफ़गानों का भी अभी अन्त नहीं हुआ था। सिकन्दर सूर हमायूं से परास्त होकर चुप नहीं बैठा था। वह सेना एकत्रित कर मुगलों को भारत से बाहर निकालने के लिए तैयारी कर रहा था। सूर वंश के अन्य भी कई व्यक्ति इस गड़बड़ की दशा का लाभ उठा कर अपने को सुल्तान बनाने की फिकर में थे। इन में

मुहम्मद आदिलशाह सूर सब से मुख्य है। वह अपने को सूर वंश का असली उत्तराधिकारी समझता था। वह स्वयं तो बहुत योग्य नहीं था, पर उसका प्रधान सहायक हेमूं नाम का एक हिन्दू था। हेमू बहुत ही योग्य सेनापति और चतुर राजनीतिज्ञ था। वह जाति का भार्गव वैश्य था। रिवाड़ी में उसकी छोटी-सी दूकान थी। पर अपनी योग्यता के कारण वह छोटे से दूकानदार से उन्नति करता-करता मुहम्मद आदिल-शाह का प्रधानमन्त्री बन गया था। हेमूं ने मुगलों के खिलाफ बड़ी भारी सेना इकट्ठी की। इस सेना की सहायता से उस ने दिल्ली और आगरा को मुगलों से जीत लिया। दिल्ली पर अधिकार कर उस ने स्वयं अपने को सम्राट् बना लिया और विक्रमादित्य की प्राचीन और शानदार उपाधि धारण कर शासन करना प्रारम्भ किया।

पानीपत का दूसरा युद्ध—मुगल बादशाह अकबर की उम्र अभी बहुत कम थी। वह स्वयं शासन करने में अयोग्य था। मुगलों का प्रधान सरदार उस समय बैरामखां था। उस ने हेमूं की पराजय के लिए बड़ी भारी तैयारी की। पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में सन १५५६ में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। इस युद्ध में अफ़गान लोग हेमूं की सहायता कर रहे थे। पर अन्त में मुगल लोग सफल हुए। हेमूं कैद कर लिया गया। इस युद्ध के बाद दिल्ली और आगरा अकबर के अधीन हो गए। पर भारतवर्ष अब भी उस के अधीन नहीं हुआ था, उस के लिए अभी बहुत से युद्धों की आवश्यकता थी।

साम्राज्य का विस्तार—अकबर का सम्पूर्ण शासनकाल साम्राज्यके विस्तार के लिए युद्धों में व्यतीत हुआ। उस के साम्राज्य विस्तार को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—(१) उत्तरीय भारत

की विजय (१५५८-७६) (२) अफगानिस्तान में युद्ध १५८०-६६) (३) दक्षिण की विजय (१५९८-१६०१)।

पानीपत की लड़ाई के बाद सन् १५५८ में ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर को जीता गया। जौनपुर सूर वंश के अफ़गानों का गढ़ था। वहां वे मुगलों के खिलाफ़ तैयारी में लगे थे। अकबर ने जौनपुर पर आक्रमण किया और उसे जीत लिया। इसके बाद मध्य भारत में गोंडवाना पर आक्रमण किया गया। वहां उस समय रानी दुर्गावती का राज्य था। दुर्गावती बड़ी ही वीर और साहसी रानी थी। उसने बड़ी वीरता के साथ मुगल सेना पर आक्रमण किया। जब तक वह जीवित रही, मुगल गोंडवाना पर अधिकार नहीं कर सके। पर युद्ध में उसकी मृत्यु होजाने पर मुगलों ने गोंडवाना जीत लिया।

अकबर और राजपूत—मुगलों के आने के पूर्व भारत के बहुत से प्रदेशों पर अफ़गानों का राज्य था। अफ़गान लोग मुगलों के कट्टर शत्रु थे। यद्यपि दोनों जातियों का धर्म एक था, पर उनमें भयंकर दुश्मनी थी। अतः मुगल लोग भारत में अपना राज्य स्थापित करते हुए अफगानों की सहायता की कभी आशा नहीं कर सकते थे। मुगल लोगों की अपनी तादाद बहुत कम थी। यदि केवल उनके भरोसे पर ही शासन किया जाता तो अकबर की भी वही दशा होती, जो पहले हुमायूं की हुई थी। अकबर इस बात को भली-भांति समझता था, इस दशा में उसका ध्यान राजपूतों की ओर गया, जो वीरता, साहस आदि गुणों में संसार की किसी भी जाति से कम न थे। अकबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिए राजपूतों को अपना आधार बनाने का प्रयत्न किया। इसी लिए उसने राजपूतों से मैत्री की। उनके साथ युद्ध करके अपनी शक्ति को नष्ट करने के

स्थान पर उसने उनसे मित्रता करने की कोशिश की। निस्सन्देह अकबर की यह नीति बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण थी। इसी के कारण वह भारत में अपना राज्य स्थापित कर सका।

राजपूत राजाओं से मेल करने के लिए अकबर ने उनके साथ विवाह का सम्बन्ध स्थापित किया। सब से पूर्व जयपुर के राजा भारमल ने अपनी कन्या का विवाह अकबर के साथ कर दिया। इसके बाद अन्य भी बहुत से राजपूत राजाओं ने अकबर के साथ जहां वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए, वहां उससे पूरी तरह मेल कर लिया। राजपूतों को मुगल साम्राज्य में ऊँचे से ऊँचे पद दिए गए। सच बात तो यह है कि मुगलों की शक्ति राजपूतों पर ही आश्रित थी।

मेवाड़ के साथ युद्ध—पर राजपूतों में मेवाड़ का राज्य किसी भी प्रकार मुगलों के आधिपत्य को स्वीकृत करने के लिए तैयार नहीं हुआ। मेवाड़ राजपूताने का सब से शक्तिशाली राज्य था। इसके राणा सम्पूर्ण भारत में प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। उनकी महत्त्वाकांक्षा भारत भर में राजपूत राज्य स्थापित करने की थी। वे मुगलों के आधिपत्य को कैसे स्वीकार कर सकते थे। इस समय मेवाड़ के राणा, सांगा के पुत्र उदयसिंह थे। अकबर ने उन पर चढ़ाई की। चित्तौड़ के किले को घेर लिया गया। चित्तौड़ का किलेदार इस समय जयमल नामक वीर राजपूत था। उसने बड़ी वीरता के साथ अकबर की सेनाओं का मुकाबला किया। पर अन्त में अकबर की विजय हुई। चित्तौड़ की स्त्रियों ने जौहर व्रत लेकर अपने को अग्निदेव के अर्पण कर दिया। राजपूत वीर नंगी तलवार हाथ में ले किले से बाहर निकल पड़े और लड़ते-लड़ते मारे गए। चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार हो गया, पर उदयसिंह ने चित्तौड़ के शत्रु के हाथ

में चले जाने पर भी दिल्ली की अधीनता स्वीकृत नहीं की। उस के वीर राजपूत निरन्तर मुगलों के साथ संघर्ष करते रहे।

राणा प्रताप—राणा उदयसिंह सन १५७२ में परलोक सिधार गए। उनके बाद प्रतापसिंह मेवाड़ के राजा बने। राजपूत इतिहास में राणा प्रताप सब से वीर और मानी राजा हुए हैं। संसार के इतिहास में जिन लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता, मान और प्रतिष्ठा के लिए अपने जीवनों को स्वाहा कर दिया है उनमें प्रताप का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने प्रण किया था कि जब तक तन में प्राण हैं, अपने देश को कभी शत्रु के हाथ में न जाने दूँगा। राणा प्रताप ने चित्तौड़ को मुगलों के हाथ से स्वतन्त्र कराने के लिए भारी उद्योग किया। पच्चीस वर्ष तक वे निरन्तर शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के साथ लड़ते रहे।

हल्दीघाटी की लड़ाई—सन् १५७६ में अकबर ने प्रताप को वश में करने के लिए बड़ा भारी आक्रमण किया। राजा मान-सिंह को मुगल सेना का सेनापति बनाया गया। मुगलों की विशाल सेना का प्रताप के मुट्ठी भर राजपूतों ने हल्दी घाटी के रणक्षेत्र में मुकाबला किया। राजपूत लोग बड़ी वीरता के साथ लड़े, पर अन्त में प्रताप की पराजय हुई। सारे मेवाड़ पर मुगलों का कब्जा हो गया, पर प्रताप अब भी निराश नहीं हुए। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते-फिरते और सेना इकट्ठी कर मुगलों के साथ युद्ध करते। राणा प्रताप ने इस समय बहुत कष्ट सहे। कभी-कभी उनकी स्त्री और बच्चों को भूखा तक रहना पड़ता था। पर वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे और निरन्तर मुगल बादशाह के साथ संघर्ष करते रहे। अकबर की मृत्यु से पहले ही उन्होंने मेवाड़ के अनेक किलों पर अपना अधिकार कर लिया था। जब तक वे जीवित रहे, निरन्तर अकबर

के साथ लड़ते रहे। अकबर यद्यपि उनका जानी दुश्मन था, पर उन्हें बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता था और उनकी वीरता की सदा प्रशंसा करता था। राणा प्रताप की मृत्यु के बाद उनके लड़के अमरसिंह ने मुगलों से सन्धि कर ली थी।

गुजरात और बंगाल की विजय—राजपूतों को अपने साथ मिला कर अकबर ने उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों पर आक्रमण किया। बंगाल में उस समय दाऊद नामका अफ़गान सुल्तान राज्य करता था। सन् १५७४ में अकबर ने उस पर आक्रमण किया। दो साल तक लड़ाई जारी रही। १५७६ में बंगाल को जीत कर मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। बंगाल की तरह गुजरात, मालवा, सिन्ध आदि अन्य प्रदेशों पर भी अकबर ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

अफ़गानिस्तान में युद्ध—भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिम सीमा पर उस समय भी बहुत-सी लड़ाकू तथा स्वतन्त्र जातियां निवास करती थीं। ये सदा युद्ध कर अपनी शक्ति को बढ़ाने तथा लूट-मार करने की फ़िकर में रहती थीं। अकबर के इनके साथ बहुत से युद्ध हुए। इन्हें परास्त करने के लिए राजपूत सेनाओं को भेजा गया। धीरे-धीरे सारे अफ़गानिस्तान, काश्मीर, कान्धार और बलोचिस्तान पर अकबर का अधिकार हो गया। इन प्रदेशों पर शासन करने के लिए राजपूत सूबेदार नियत किए गए, जो अपने वीर राजपूतों के साथ इन प्रदेशों की लड़ाकू जातियों को भलीभांति कब्ज़े में रख सकते थे।

दक्षिण पर चढ़ाई—उत्तरी भारत को पूरी तरह अपने अधीन कर अकबर ने दक्षिण पर आक्रमण किया। वहां अहमदनगर की निज़ामशाही में उत्तराधिकारी के लिए झगड़ा चल रहा था। इस झगड़े से फायदा उठा कर अकबर ने अहमदनगर पर चढ़ाई



गुरु नानक

[१६०



अकबर

की। अहमदनगर में उन दिनों चांदबीबी नामक एक वीर महिला का शासन था। चांदबीबी ने बड़ी वीरता के साथ मुगलों का मुकाबला किया। जब तक वह जीवित रही, अहमदनगर को मुगल अपने कब्जे में न ला सके। उसके मरने पर, सन १६०० में अहमदनगर मुगलों के हाथ में चला गया। इसके बाद बरार और खानदेश को भी अकबर ने जीत लिया दक्षिण के प्रदेशों की विजय से अकबर का साम्राज्य अफ़गानिस्तान से गोदावरी नदी तक फैल गया।

अकबर के सुधार—अकबर बहुत ही उदार स्वभाव का था। राजपूत स्त्रियों के संसर्ग और हिन्दू विद्वानों के सत्संग के कारण उसके विचारों में बहुत उदारता आगई थी। उसने भारत में बहुत से सुधार किए। सन १५६४ में उसने जज़िया कर को हटा दिया। इस कर से राज्य को करोड़ों रुपए की आमदनी थी। पर अपनी हिन्दू प्रजा को संतुष्ट करने के लिए अकबर ने इस आमदनी की परवाह नहीं की और जज़िया को हटा दिया। उस समय तक हिन्दुओं के तीर्थस्थानों पर यात्रियों से अनेक टैक्स लिए जाते थे। अकबर ने उन्हें भी हटा दिया। सामाजिक सुधारों की ओर भी अकबर ने ध्यान दिया। सती प्रथा के विरुद्ध उसने आज्ञा प्रकाशित की और जो लोग किसी स्त्री को उस की इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती सती करें, उन्हें दण्ड देने की व्यवस्था भी की। अकबर बाल-विवाह के भी विरुद्ध था। बाल्यावस्था में विवाह न हो सके, इस के लिये भी उस ने आज्ञा प्रकाशित की। संस्कृत के अध्ययन को अकबर ने बहुत प्रोत्साहना दी। संस्कृत के अनेक विद्वान उसकी संरक्षा में रहते थे।

हिन्दूओं के प्रति समानता का बर्ताव—जज़िया और तीर्थ कर के नष्ट कर देने के कारण हिन्दू लोग अकबर से बहुत

संतुष्ट थे। उन के साथ अकबर ने बिलकुल समानता का बर्ताव किया। अकबर के समय में मुगल साम्राज्य के ऊँचे से ऊँचे पदों पर हिन्दुओं को नियत किया गया। राजा टोडरमल अकबर का अर्थ सचिव और प्रधान मन्त्री था। राजा भगवानदास और मानसिंह उसके सब से बड़े सेनापति थे। बीरबल उसका अन्तरंग मित्र और प्रधान सहायक था। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से हिन्दू उस के राज्य में सूबेदार, सेनापति आदि के ऊँचे पद प्राप्त किये हुए थे। अकबर ने हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों को दृष्टि में रखकर गोहत्या भी बन्द कर दी थी। उस समय मुगल साम्राज्य में गोकुशी नहीं हो सकती थी।

अकबर के धार्मिक विचार——चौबीस वर्ष की आयु तक अकबर इस्लाम का अनुयायी था। पर १५७५ में शेख मुबारक और उस के दो लड़के अबुलफ़जल और फ़ैज़ी उसके दरबार में आये। ये सूफी सम्प्रदाय के थे और धार्मिक दृष्टि से बहुत उदार विचार रखते थे। इन के संसर्ग से अकबर के विचारों में परिवर्तन आना शुरू हुआ। उन के परामर्श से अकबर ने अपनी राजधानी फ़तहपुर सीकरी में एक इबादतखाने (पूजागृह) का निर्माण कराया। प्रति बृहस्पतिवार को यहां एक बड़ी सभा होती थी, जिस में हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई, शिया, सुन्नी और यहूदी आदि विविध धर्मों के विद्वान आपस में धार्मिक विषयों पर विचार करते थे। अकबर स्वयं सभापति का आसन ग्रहण करता था और धर्माचार्यों के इन विचारों को बड़े ध्यान से सुनता था।

विविध धर्मों के इन विचारों को सुन कर अकबर के धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन आगया। इस्लाम से उसका विश्वास उठ गया। उस ने एक ऐसे नवीन धर्म का विकास किया, जिस

में सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों का समावेश हो। इस नये धर्म का नाम दीने-इलाही रखा गया। अकबर स्वयं दीने-इलाही का प्रवर्तक और गुरु बना। इसका मुख्य सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका प्रतिनिधि है। मनुष्यों को अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिये, किसी पर अन्ध विश्वास नहीं करना चाहिये। दीने-इलाही के अनुयायी मांस नहीं खाते थे और पशु हिंसा को पाप समझते थे। अकबर प्रातःकाल के समय सूर्य को नमस्कार करता था और सूर्य तथा अग्नि को दैवी शक्ति का प्रत्यक्ष रूप मानता था। अकबर के बहुत से दरबारी दीने-इलाही के अनुयायी बन गये। पर यह धर्म देर तक नहीं बच सका। अकबर के साथ ही उसकी भी समाप्ति हो गई।

अकबर और इस्लाम—अन्य धर्माचार्यों के प्रभाव में आकर अकबर ने न केवल इस्लाम का परित्याग ही कर दिया था, अपितु, इस्लाम के विरुद्ध अनेक आज्ञायें भी प्रकाशित की थीं। उस ने १२ साल की उम्र से पहले बच्चों का खुतना करना रोक दिया था। गोमांस भक्षण का निषेध कर दिया था। सूअर का मांस खाने की सब को स्वाधीनता दे दी गई थी। अकबर को आज़ान बहुत बुरी मालूम पड़ती थी। अरबी भाषा तथा इस्लामी धर्म ग्रन्थों के समान पर वह संस्कृत तथा अन्य हिन्दू विज्ञानों को प्रोत्साहन देता था। अकबर के महल में हिन्दू रानियों के लिये मन्दिर बने हुए थे, जहां स्वतन्त्रता के साथ देवी-देवताओं की पूजा होती थी। अकबर स्वयं भी इन पूजाओं में शामिल होता था।

मालगुज़ारी का नया प्रबन्ध—अकबर का अर्थ सचिव राजा टोडरमल बड़ा बुद्धिमान था। उसने ज़मीन की पैमाइश करने और फिर उपज के अनुसार मालगुज़ारी निश्चित करने

के लिए बड़ा भारी काम किया। टोडरमल ने पहले तो ज़मीनों की अच्छी तरह पैमाइश कराई और फिर किस ज़मीन से कितनी पैदवार होती है, इसका हिसाब लगवाया। ज़मीन को पैदावार के अनुसार तीन हिस्सों में बांटा गया। कुल पैदावार का तिहाई हिस्सा सरकार मालगुज़ारी के रूप में प्राप्त करती थी। मालगुज़ारी नकद रुपये में दी जावे या अनाज के रूप में यह किसानों की अपनी इच्छा पर था। मालगुज़ारी वसूल करने वालों को निश्चित वेतन मिलता था। मालगुज़ारी वसूल करना ठेके पर नहीं दे दिया जाता था। हर दस साल के बाद फिर नए सिरे से मालगुज़ारी का बन्दोबस्त किया जाता था।

शासन प्रबन्ध—अकबर ने अपने साम्राज्य को १५ सूबों में बांटा हुआ था। जब दक्षिण जीत लिया गया, तो तीन सूबे और बढ़ गए। प्रत्येक प्रान्त पर एक सूबेदार नियत किया जाता था, जो शासन और सेना दोनों का अधिपति होता था। प्रान्त के अनेक विभाग होते थे और उन पर शासन करने के लिये अन्य कर्मचारी नियत होते थे। अकबर से पहले यह प्रथा थी कि सूबेदारों व अन्य कर्मचारियों को वेतन न देकर जागीरें देदी जाती थीं, जिन की आमदनी से वे अपना खर्च चलाते थे। अकबर ने इस प्रथा को हटा दिया। राजकर्मचारियों को जागीरों के स्थान पर निश्चित वेतन दिए जाने लगे।

इमारतें—अकबर को इमारतें बनवाने का बड़ा शौक़ था। उसने आगरा के समीप फ़तहपुर सीकरी में अपने बहुत से महल बनवाए थे। सीकरी की इमारतों में जामा मसजिद और बुलन्द दरवाज़ा सब से प्रसिद्ध है। बुलन्द दरवाज़े की ऊँचाई १७६ फ़ीट है। भारतवर्ष में इस से ऊँचा और शानदार द्वार अन्य कोई नहीं है। सीकरी की इमारतें बहुत ही शानदार और भव्य हैं।

आगरे का क़िला भी अकबर का बनवाया हुआ है। उस के अन्दर दीवानेख़ास, दीवाने आम और जहांगीरी महल की इमारतें बड़ी सुन्दर हैं। आगरा के समीप सिकन्दरा में अकबर का मक़बरा है। उसका प्रारम्भ अकबर ने स्वयं किया था, पर जहांगीर ने उसे पूर्ण कराया था।

साहित्य—अकबर को साहित्य से बड़ा प्रेम था। उसके दरबार में बहुत से कवि और विद्वान निवास करते थे। अकबर के आदेश से अनेक संस्कृत पुस्तकों का फ़ारसी में अनुवाद किया गया। अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, रहीम, बीरबल आदि बहुत से विद्वान अकबर के दरबार में रहते थे।

अकबर का काल भारत के साहित्यिक इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी की इस समय में बहुत उन्नति हुई। हिन्दी भाषा के सब से बड़े कवि सूरदास और तुलसीदास इसी समय में हुए। सूरदास ने कृष्ण की भक्ति में बड़े सुन्दर पदों का निर्माण किया। उनका ग्रन्थ सूरसागर सरस और मधुर कविताओं का उत्कृष्ट उदाहरण है। तुलसीदास हिन्दी के सब से बड़े कवि हुए हैं। उन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामायण' को ब्राह्मण और भङ्गी-चमार समानरूप से पढ़ते हैं। सर्वसाधारण हिन्दू जनता के लिए रामायण ही धर्मग्रन्थ का कार्य करता है।

सङ्गीत के प्रसिद्ध आचार्य तानसेन भी अकबर के समय में हुए। अकबर का काल साहित्य और कला की दृष्टि से बहुत ही उन्नत था।

अकबर की मृत्यु—सम्राट् अकबर की मृत्यु सन १६०५ में हुई। यदि उस के उत्तराधिकारी उस की नीति का पालन भलीभांति करते रहते, तो मुग़ल साम्राज्य भारत में बहुत देर तक कायम रहता।

सत्ताईसवां अध्याय

जहांगीर और शाहजहां

अकबर की मृत्यु के बाद सन १६०५ में उस का लड़का सलीम जहांगीर के नाम से राजगद्दी पर बैठा। वह राजपूत माता का पुत्र था और यद्यपि उस में अपने पिता जैसी योग्यता और उदारता नहीं थी, पर अनेक अंशों में उस ने अपने पिता की उदार नीति को जारी रखा। न्याय से उसे बहुत प्रेम था। लोगों के आराम के लिये उसने आगरे के क़िले की दीवार से एक जंजीर लटका दी थी, जिस के दूसरे सिरे पर एक घण्टी बादशाह के कमरे में लटकी रहती थी। यदि किसी को कोई फरियाद करनी होती, तो वह इस जंजीर का खींच देता था और घण्टी बादशाह के कमरे में बज जाती थी। बादशाह तुरन्त बाहर आता और फरियाद पर ध्यान देता था।

खुसरो का विद्रोह—जहांगीर का बड़ा लड़का खुसरो था। उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और स्वयं राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। पर उसे सफलता नहीं हो सकी। लाहौर के समीप जहांगीर ने उसे बुरी तरह परास्त किया। खुसरो पकड़ा गया, उसे कारागार में डाल कर उस के साथियों को, जिन की संख्या ७०० थी, बड़ी निर्दयता के साथ प्राणदण्ड दिया गया।

सिक्ख धर्म में कायापलट—हम पहले बता चुके हैं कि पन्द्रहवीं सदी की धार्मिक सुधारणा में पञ्जाब में एक महान धार्मिक सुधारक उत्पन्न हुआ था, जिस का नाम नानक था। उसके शिष्यों को सिक्ख कहते थे। पञ्जाब में सिक्ख धर्म धीरे-धीरे उन्नति कर रहा था। जहांगीर के समय में सिक्खों के गुरू का नाम अर्जुनदेव था। जब राजकुमार खुसरो अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर लाहौर की तरफ़ जा रहा था, तो गुरू अर्जुनदेव ने

उसे आश्रय प्रदान किया था। जहांगीर इस बात पर अर्जुन से बहुत नाराज हुआ और जब खुसरो के सहायकों को भयंकर दण्ड दिये गये, तो अर्जुनदेव को भी सजा मिली। उस पर जुर्माना किया गया। गुरु अर्जुन ने इस जुर्माने को देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वे अपनी सम्पत्ति को ईश्वर व धर्म का मानते थे। इस पर जहांगीर ने उन्हें मृत्युदण्ड दिया। सिक्ख धर्म के इतिहास में इस घटना ने महान परिवर्तन किया। सिक्ख लोग अपने गुरु का घात सहन नहीं कर सके। उन्होंने अपने को संगठित करना शुरू किया और धीरे-धीरे वे धार्मिक सम्प्रदाय के साथ-साथ एक राजनीतिक शक्ति भी बन गये।

नूरजहां—जहांगीर की पहली सभी स्त्रियां हिन्दू थीं। पर पीछे से उसने नूरजहां नामक एक पर्शियन महिला से विवाह किया। नूरजहां का असली नाम मेहरुन्निसा था। उस का पिता ग़यासबेग पर्शिया की राजधानी तेहरान का रहने वाला था। ग़यास अपने कुटुम्ब सहित भारत आया और धीरे-धीरे अकबर के दरबार में उसे अच्छा पद प्राप्त हो गया। अकबर के समय में ही जहांगीर का मेहरुन्निसा के साथ परिचय हो गया था और वह उस से विवाह करने के लिये लालायित था। पर अकबर को यह सम्बन्ध पसन्द नहीं था। उस ने मेहरुन्निसा का विवाह बंगाल के सूबेदार शेर अफ़गन के साथ कर दिया। जब जहांगीर बादशाह बना, तो उसे अपनी हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण करने का अच्छा अवसर मिला। उस ने शेर अफ़गन को मरवा कर मेहरुन्निसा के साथ अपना विवाह कर लिया। विवाह के बाद उस का नाम नूरजहां पड़ा। नूरजहां अत्यन्त साहसी, बहादुर और चालाक स्त्री थी। जहांगीर के ऊपर उसने जादू सा कर लिया था। वह उस के प्रेम के नशे में मस्त रहता था। शासन की उसे

ज़रा भी परवाह न थी। शासन में, नूरजहां का खुला हाथ था। वह जो चाहती, करती। नूरजहां शासन कार्य में चतुर थी।

साम्राज्य का विस्तार—जहांगीर के शासन काल में कांगड़ा का राज्य मुगलों के अधीन हुआ। कांगड़ा का राज्य हिमालय के दुर्गम पहाड़ों में स्थित था। अकबर के समय में भी उस पर हमले हुए थे, पर सफलता नहीं हुई थी। अब जहांगीर ने उसे जीत कर अपने अधीन कर लिया। अहमदनगर की निज़ामशाही को अकबर के समय में जीत कर मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया गया था। पर अकबर की मृत्यु के बाद मलिक अम्बर नाम के सरदार ने निज़ामशाही राज्य के उद्धार के लिये बड़ा भारी प्रयत्न किया। मलिक अम्बर बहुत योग्य सेनापति था। उस ने अहमदनगर राज्य के बहुत से हिस्सों को जीत कर निज़ामशाही का पुनरुद्धार किया। जहांगीर ने उसे परास्त करने के लिये अनेक सेनायें भेजीं, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। मलिक अम्बर के बाद हामिदखां ने बड़ी योग्यता के साथ निज़ामशाही राज्य का संचालन किया। दक्खिन के ये युद्ध अभी जारी ही थे कि सन १६२७ में जहांगीर की मृत्यु हो गई।

लाहौर के पास शाहदरे में जहांगीर का मकबरा है। जहांगीर को कला से बड़ा प्रेम था। प्रकृति के सौन्दर्य का वह उपासक था। वह प्रायः प्रति वर्ष प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिये काश्मीर जाया करता था। वहां के प्रसिद्ध सुन्दर शालामार और निशात बाग उसी के बनवाये हुए हैं। अन्य भी अनेक सुन्दर स्थानों पर उसने अपने बाग आदि बनवाये। कला का भी वह बड़ा प्रेमी था। अनेक चित्रकार उसकी संरक्षा में रहते थे।

शाहजहां—जहांगीर के चार पुत्र थे, खुसरो, परवेज़, खुर्रम और शहरयार। बादशाह कौन बने, इसके लिये इन में आपस में

लड़ाई हुई। अन्त में खुर्रम को सफलता हुई। वह शाहजहां के नाम से राजगद्दी पर बैठा। उसने १६२७ से १६५८ तक राज्य किया।

दक्षिण पर आक्रमण—मलिक अम्बर ने अहमदनगर की निजामशाही का पुनरुद्धार किया था। शाहजहां उसे जीतने के लिये निरन्तर कोशिशें करता रहा। आखिर उसे सफलता हुई और १६३३ में अहमदनगर जीत लिया गया। इसके बाद बीजापुर और गोलकुण्डा पर आक्रमण शुरू हुए। ये दोनों राज्य भी अहमदनगर के समान बहमनी राज्य के खण्डहरों पर कायम हुए थे। बीजापुर का सुलतान बड़ी वीरता के साथ लड़ा, पर मुगल बादशाह का मुकाबला कर सकना उस के लिये सम्भव नहीं था। उसने सन्धि कर ली और वार्षिक रूप से कर दे कर मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।

शाहजहां का कलाप्रेम—शाहजहां की प्रसिद्धि उसके युद्धों व विजयों के कारण नहीं है। उसकी प्रसिद्धि का वास्तविक कारण उस का कलाप्रेम है। उसकी सब से सुन्दर इमारत ताजमहल है, जिसे उसने अपनी सुन्दर पत्नी मुमताजमहल के मकबरे के रूप में बनवाया था। ताजमहल न केवल भारत में ही, अपितु संसार की सब से सुन्दर इमारतों में गिना जाता है। वर्तमान दिल्ली को भी शाहजहां ने ही बसाया था। दिल्ली का लाल किला और उस के अन्दर विद्यमान भव्य महल शाहजहां के बनवाये हुए हैं। दिल्ली की जामा मसजिद और आगरे की मोती मसजिद भी शाहजहां ने बनवाई थी। ये इमारतें भवन-निर्माण कला की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शाहजहां बड़े ठाट-बाट से रहता था। उस का कोष हीरे, मोती, जवाहिरात आदि से परिपूर्ण था। उसने अपने लिये जो मयूर सिंहासन बनवाया था, उस की लागत एक करोड़ रुपये से भी अधिक थी।

उत्तराधिकार के लिये युद्ध—शाहजहां के चार पुत्र थे, दारा,

शुजा, औरङ्गज़ेब और मुराद । दारा अत्यन्त उदार और हिन्दू धर्म का पक्षपाती था। यदि शाहजहां के बाद वह बादशाह बनता, तो अकबर की नीति पूर्णरूप से सफल हो सकती। दारा का मुख्य विरोधी औरङ्गज़ेब था, जो इस्लाम का कट्टर पक्षपाती और हिन्दू धर्म का घोर विरोधी था। दारा शाहजहां के पास रह कर राज्य कार्य को सम्भालता था और औरङ्गज़ेब दक्षिण का सूबेदार था। दक्षिण के युद्धों के कारण मुगल साम्राज्य की बहुत-सी सेना उधर रहती थी और औरङ्गज़ेब समय आने पर उस का उपयोग कर सकता था। शुजा बंगाल का सूबेदार था। वह वीर होते हुए भी भोगी और विलासी था। मुराद मूर्ख था और शराब पीने में मस्त रहता था। उसे गुजरात की सूबेदारी मिली हुई थी।

सन् १६५७ में शाहजहां बीमार पड़ा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह बचेगा नहीं। यह समाचार सुनते ही चारों भाई अपने को बादशाह बनाने की फ़िक्र करने लगे। औरङ्गज़ेब ने दक्षिण की विशाल सेना ले कर आगरा की तरफ़ प्रस्थान किया। मुराद को उसने अपने साथ मिला लिया। आगरा से नौ मील दक्षिण की तरफ़ समूगढ़ नामक स्थान पर दारा की अध्यक्षता में आई बादशाही सेना और औरङ्गज़ेब की सेनाओं का मुकाबला हुआ। दारा हार गया। उसे पकड़ लिया गया और औरङ्गज़ेब ने बड़ी क्रूरता के साथ उस की हत्या करवा दी। मुराद को भी गिरफ्तार कर जान से मार डाला गया। शुजा का बङ्गाल में पीछा किया गया। वह अराकान की तरफ़ भाग गया और उधर ही कहीं उस की मृत्यु हो गई।

सन १६५८ में औरङ्गज़ेब दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा। बादशाह शाहजहां अभी जीवित था। उसे आगरे के किले में कैद कर दिया गया। सात वर्ष तक वह वहां जीवित रहा। उसका अन्तिम जीवन बड़े कष्ट में व्यतीत हुआ। सन् १६६५ में उस की मृत्यु हो गई।

अठाईसवां अध्याय

औरंगज़ेब

शाहजहां के जीवित रहते हुए भी औरंगज़ेब जिस प्रकार मुगल साम्राज्य का बादशाह बन गया, इसका वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। औरंजेब कट्टर मुसलमान था। वैयक्तिक जीवन में वह बहुत सदाचारी तथा पवित्र था। भोग-विलास से उसे घृणा थी। वह सादे वस्त्र पहनता था और अपनी मेहनत से जो कुछ कमाता, उसी को अपने लिए खर्च करता था। राज्य के धन को अपने लिए खर्च करना उसे उचित प्रतीत न होता था। धार्मिक मुसलमान के लिए जो नियम, व्रत और कर्तव्य आवश्यक हैं, उन्हें वह बड़ी सावधानी के साथ पूर्ण करता था। जिस प्रकार निजी जीवन में वह इस्लाम की शिक्षाओं का अक्षरशः अनुसरण करता था, उसी तरह वह भारत के शासन में भी इस्लामी सिद्धान्तों को पूरी तरह प्रयोग में लाना चाहता था। यह उसकी भूल थी। कारण यह कि भारत की अधिकांश जनता इस्लाम का अनुसरण करने वाली नहीं थी।

नीति में परिवर्तन—मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए अकबर ने जिस नीति का प्रारम्भ किया था, और आंशिक रूप से जहांगीर और शाहजहां भी जिसका पालन करते रहे थे, औरंगज़ेब ने उसमें परिवर्तन कर दिया। मुगल साम्राज्य की नींव राजपूतों और हिन्दुओं की सहायता और सहानुभूति पर रखी गई थी। औरंगज़ेब ने इसी पर कुठाराघात किया। उसने भारत के शासन को अपनी समझ के अनुसार इस्लामी सिद्धान्तों के अनुकूल

चलाने की धुन में हिन्दुओं के खिलाफ बहुत-सी बातें कीं। परिणाम यह हुआ कि चारों तरफ़ से हिन्दू लोग उसके खिलाफ़ उठ खड़े हुए। इस्लाम के अनुसार भारतीय शासन को ढालने के लिए उसने जो कार्य किए, वे निम्नलिखित हैं—

१—हिन्दुओं पर जज़िया कर फिर लगाया गया। दिल्ली के हिन्दुओं को यह बात मालूम हुई, तो वे बड़ी भारी संख्या में एकत्रित हुए। उन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि जज़िया न लगाया जाय। पर औरंगजेब ने एक न सुनी। हिन्दू केवल प्रार्थना करके ही चुप नहीं रह गए। बादशाह जब नमाज पढ़ने के लिए जामा मस्जिद आया, तो दिल्ली भर के हिन्दु एकत्रित हुए और उन्होंने अपना असन्तोष प्रदर्शित किया। इस पर औरंगज़ेब ने हिन्दुओं को तितर-बितर करने के लिए हाथियों को दौड़ाया।

२—मन्दिरों को तोड़ने के लिए हुक्म जारी किया गया। काशी में विश्वनाथ, गुजरात में सोमनाथ और मथुरा में केशवराय के मन्दिर उस समय बहुत प्रसिद्ध थे। औरंगज़ेब की आज्ञा से वे तोड़ दिए गए। अन्य भी बहुत-से मन्दिर गिराए गए।

३—व्यापार, व्यवसाय आदि में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए भेद किया गया। अगर मुसलमान व्यापारी से ढाई प्रति शत कर लिया जाता था, तो हिन्दू व्यापारी से पांच प्रति शत। इसका उद्देश्य यह था कि मुनाफे से आकृष्ट होकर हिन्दू लोग इस्लाम को स्वीकार कर लें।

४—जो हिन्दू इस्लाम को स्वीकार कर लेते थे, उन्हें बड़े इनाम दिए जाते थे। उनके जुलूस निकाले जाते थे। उन्हें राज्य में ऊँचे पद मिलते थे। 'मुसलमान बन जाओ और कानूनगो बन जाओ' यह उस समय कहावत-सी बन गई थी।

५—हिन्दू लोग सार्वजनिक तौर पर अपने उत्सव और त्यौहार

न मना सकें यह आज्ञा प्रकाशित की गई।

६—संगीत बन्द कर दिया गया।

७—राज्य में ऊँचे पद हिन्दुओं के स्थान पर मुसलमानों को दिए जाने लगे।

नीति परिवर्तन का परिणाम—औरंगज़ेब की इस हिन्दू विरोधिनी नीति का परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए बहुत बुरा हुआ। चारों तरफ़ से विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी। हिन्दुओं की जो शक्ति अब तक मुगल साम्राज्य के लिए सहारा बनी हुई थी, वह अब उसे पलटने के लिए तैयार हो गई। औरंगज़ेब की हिन्दू विरोधिनी नीति के कारण उत्तरी भारत में जो विद्रोह हुए, वे निम्न लिखित हैं।

(१) *जाटों का विद्रोह*—मथुरा के समीप जाट लोग गोकुल के नेतृत्व में विद्रोह के लिए आ खड़े हुए। उन्होंने मथुरा के फौजदार को कत्ल कर दिया। बादशाह को उन्हें शान्त करने में बहुत दिक्कत उठानी पड़ी। बीस साल के लगभग वे निरन्तर मुगल सेनाओं का मुकाबला करते रहे।

(२) *सतनामियों का विद्रोह*—सतनामी एक सम्प्रदाय का नाम है, जिसके अनुयायी नारनोल के आसपास के प्रदेशों में निवास करते थे। उन्होंने भी विद्रोह कर दिया। उन्हें परास्त करने के लिय जो भी सेनायें भेजी जातीं, असफल होकर लौट आतीं। उनकी वीरता को देखकर बहुत से लोगों ने समझा कि वे जादू जानते हैं। औरंगजेब ने उन्हें परास्त करने के लिए कुरान की आयतें कागज़ों पर लिखीं और उन्हें मुगल सेना के झंडों के साथ बँधवाया। बड़ी कठिनता से सतनामी लोगों का विद्रोह शान्त किया गया।

(३) *सिक्खों का उत्कर्ष*—किस प्रकार सिक्ख लोग राज-

नीतिक शक्ति बनने शुरू हुए, इसका हाल हम पहले लिख चुके हैं। सिक्खों का नौवां गुरु तेगबहादुर था। औरंगज़ेब जिस प्रकार हिन्दू मन्दिरों को गिरवा रहा था, वह तेगबहादुर को पसन्द नहीं था। उसने बादशाह की नीति का विरोध किया। जब औरंगज़ेब को यह बात मालूम हुई, तो उसे बड़ा क्रोध आया। गुरु को दिल्ली बुलाया गया और उस पर यह अपराध लगाया गया कि उसने बादशाह के खिलाफ बग़ावत फैलाई है। तेगबहादुर के सन्मुख दो विकल्प रखे गये। या तो वह इस्लाम को स्वीकार कर ले, अन्यथा उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। तेगबहादुर ने दूसरा विकल्प चुना। बड़ी क्रूरता से उसका वध किया गया। गुरु के कत्ल का हाल जानकर सिक्खों में सनसनी फैल गई। वे अपने गुरु की हत्या का बदला लेने के लिये उठ खड़े हुए। एक छोटे से धार्मिक सम्प्रदाय के लिये यह कितना कठिन काम था कि शक्तिशाली मुगल बादशाहत का मुकाबला कर सकें। पर इसी समय सिक्खों में एक महापुरुष उत्पन्न हुआ, जिसने उन्हें संगठित कर एक प्रबल शक्ति के रूप में परिणत कर दिया। यह महापुरुष गुरू गोबिन्दसिंह था। यह सिक्खों का दसवां और अन्तिम गुरू था। गुरु गोबिन्द ने सिक्खों को एक सैनिक शक्ति बना दिया। वह कहा करता था—

'चिड़ियों से मैं बाज बनाऊं, तो गुरु गोबिन्दसिंह कहाऊं।'

सचमुच उसने पञ्जाब की चिड़ियों को बाज बना दिया। उसने प्रत्येक सिक्ख के लिये पांच ककों का धारण करना आवश्यक कर दिया। पांच कक्के यह थे—कंघी, कच्छ, कड़ा, केश और कृपाण। इन का उद्देश्य यह था कि सिक्ख सिपाहियों की तरह रहें और सैनिक कार्य ही अपना पेशा समझें।

गुरु गोबिन्दसिंह राजाओं के समान रहते थे। पर मुग़ल

साम्राज्य के सम्मुख उन की शक्ति कितनी है, यह भी उन्हें भली भांति ज्ञात था। इसलिये उन्होंने पञ्जाब के पहाड़ों में अपना केन्द्र बनाया और समय-समय पर वहां से निकल कर मुगल लोगों पर आक्रमण शुरू किये। मुगलों ने गोबिन्दसिंह को कुचलने के लिये कोई कसर शेष नहीं रखी। गुरु गोविन्द के दोनों लड़के पकड़े गये। उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिये कहा गया। पर वे इसके लिये तैयार न हुये। उन्हें जीते जी दीवार में चुन दिया गया—पर वे अपने धर्म से नहीं डिगे। औरङ्गज़ेब की मृत्यु तक गुरु गोविन्दसिंह मुगलों के विरुद्ध लड़ते रहे।

(४) *राजपूतों के विद्रोह*—औरङ्गज़ेब चाहता था कि राजपूत राज्यों को एक-एक करके नष्ट कर दे। अपनी नीति को क्रिया में परिणत करने का उसे अवसर तब मिला, जब १६७८ में मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो गई। जसवन्तसिंह मुगल बादशाहत की तरफ़ से अफ़गानिस्तान का सूबेदार था। बहुत से लोगों का ख्याल है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु में भी औरङ्ग़ज़ेब का हाथ था। जसवन्तसिंह का लड़का अभी बिलकुल बच्चा था। इस स्थिति से लाभ उठा कर औरङ्गज़ेब ने मारवाड़ को अपने कब्ज़े में कर लिया। उस का शासन करने के लिये मुसलमान कर्मचारी नियत किये गये। इस दशा में मारवाड़ में एक वीर उत्पन्न हुआ, जिस का नाम दुर्गादास राठौर था। उसने औरङ्गज़ेब की नीति के खिलाफ़ झण्डा खड़ा किया और मारवाड़ के राठौर लोगों को एकत्रित कर मुगल बादशाह का बड़ी सफलता के साथ मुकाबला किया। चौथाई सदी तक राठौर दुर्गादास बड़ी वीरता के साथ मुगलों से युद्ध करता रहा। आज भी राजपूताने में दुर्गादास की कीर्ति गाथा घर-घर में गाई जाती है। वहां गीत प्रचलित है—'माता ऐसा पूत जन जैसा दुर्गादास।'

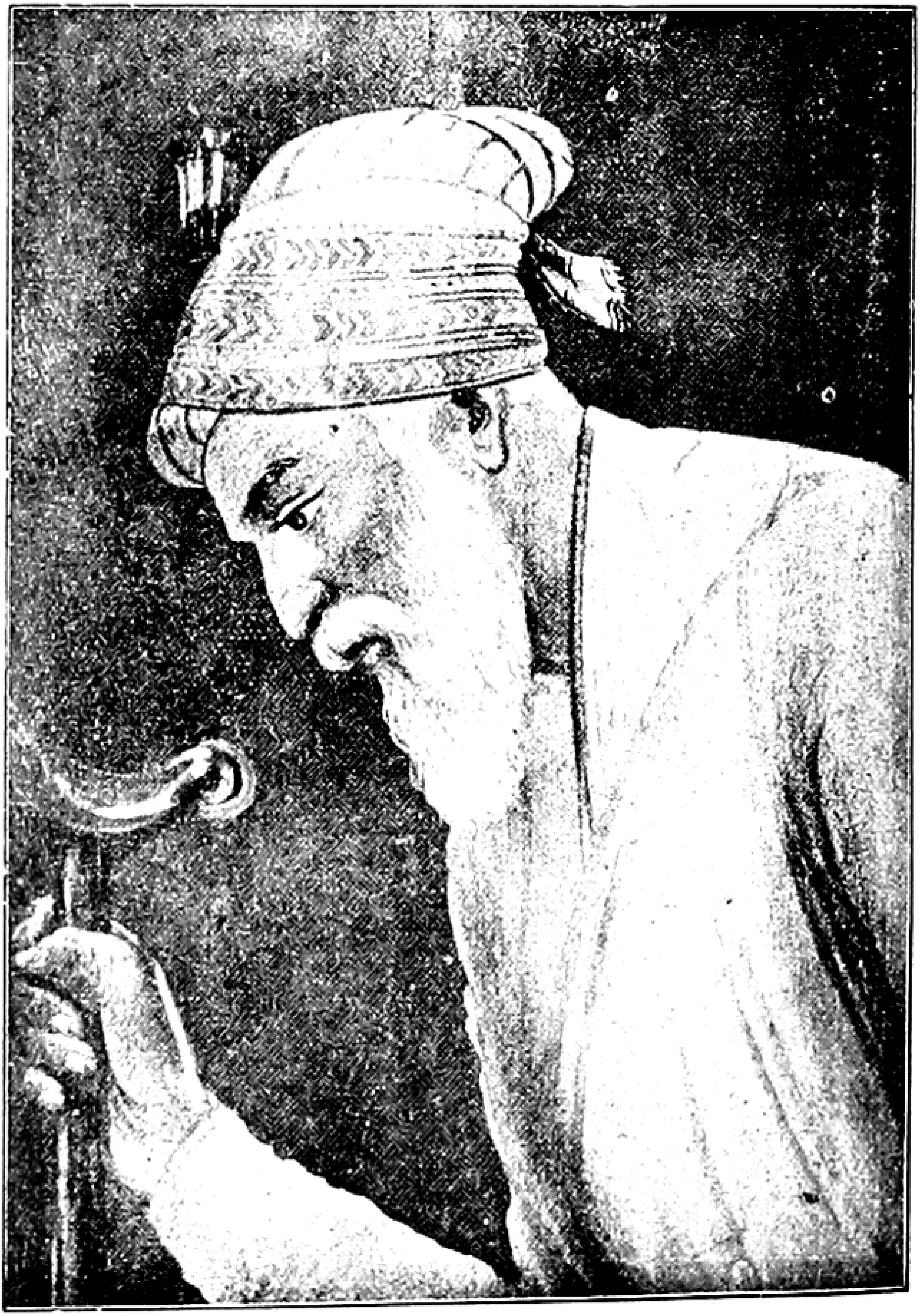
औरंगज़ेब की हिन्दू विरोधिनी नीति के कारण मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने भी दुर्गादास का साथ दिया, कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि सारे राजपूताने में औरङ्गज़ेब के विरुद्ध विद्रोहाग्नि प्रदीप्त हो उठी है। बादशाह ने अनेक सेनायें राजपूतों के विरुद्ध भेजीं, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। आखिर उसे राजपूतों के साथ सन्धि के लिये विवश होना पड़ा। मारवाड़ पर जसवन्तसिंह के पुत्र अजितसिंह का अधिकार स्वीकृत किया गया। पर ध्यान में रखना चाहिए कि यह सन्धि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद सन् १७०६ ई० में हुई थी।

इसी प्रकार अन्य भी बहुत से विद्रोह औरङ्गज़ेब की नीति के कारण हुए। दक्षिण भारत में शिवा जी ने मराठा राज्य की नींव भी इसी कारण डाली। उस पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। इस में सन्देह नहीं कि औरङ्गज़ेब की हिन्दू विरोधो नीति के कारण जो प्रचण्ड विद्रोहाग्नि प्रदीप्त हुई। उसने मुगल साम्राज्य को तहस-नहस कर दिया। मुगल साम्राज्य के पतन का असली कारण औरङ्गज़ेब की यही नीति थी।

दक्षिणी भारत की विजय—मुगल सम्राट शुरू से ही दक्षिणी भारत में भी अपना साम्राज्य फैलाना चाहते थे। अकबर ने बरार, खानदेश और अहमदनगर के बड़े हिस्से को जीत लिया था। शाहजहां के समय अहमदनगर की निज़ामशाही पूर्णरूप से खतम कर दी गई। पर बीजापुर और गोलकुण्डा के शक्तिशाली राज्य अब तक भी विद्यमान थे। औरंगज़ेब साम्राज्य-विस्तार की स्वाभाविक अभिलाषा से इन्हें अपने अधीन करना चाहता था। इसके अतिरिक्त एक अन्य भी कारण था। गोलकुण्डा और बीजापुर के सुल्तान शियाधर्म के मानने वाले थे। औरङ्गज़ेब कट्टर सुन्नी था। उसकी दृष्टि में शिया लोग हिन्दुओं के समान काफ़िर



शिवाजी



औरंगज़ेब

थे। उसने एक बड़ी फौज लेकर दक्षिण की तरफ़ प्रस्थान किया। उस के पिछले पच्चीस वर्ष दक्षिण में ही व्यतीत हुए। आखिर औरङ्गज़ेब गोलकुण्डा और बीजापुर के स्वतन्त्र सुल्तानों का अन्त कर उन्हें अपने साम्राज्य में शामिल करने में समर्थ हुआ।

दक्षिण में औरङ्गज़ेब ने केवल गोलकुण्डा और बीजापुर का ही अन्त नहीं किया, उसकी अधिक शक्ति मराठों के साथ युद्ध करने और उन्हें परास्त करने में व्यतीत हुई। औरङ्गज़ेब की मृत्यु सन् १७०८ में दक्षिणी भारत औरङ्गाबाद में हुई।

उनतीसवां अध्याय

मराठों का अभ्युदय

दक्षिण भारत में महाराष्ट्र का प्रदेश प्रायः जङ्गलों और पहाड़ों से परिपूर्ण है। इस के पर्वतशिखरों पर बहुत से दुर्गम क़िले बने हुए हैं। देश का जलवायु उत्तम और स्फूर्तिदायक है। पैदावार वहां बहुत कम होती है। महाराष्ट्र के निवासियों को मराठा कहते हैं। वे डीलडौल के छोटे, हृष्ट-पुष्ट और परिश्रमी होते हैं। मराठे सरदार अपने पहाड़ी क़िलों में निवास करते थे और अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के मुसलमान सुल्तानों की अधीनता स्वीकृत कर उन्हें टैक्स दिया करते थे। मराठे सरदारों ने इन राजाओं से बहुत से उच्च पद प्राप्त किये हुये थे।

धार्मिक सुधार—पन्द्रहवीं सदी में जब सम्पूर्ण भारत में धार्मिक सुधार का आन्दोलन शुरू हुआ, तो महाराष्ट्र में भी अनेक ऐसे सुधारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने मराठा लोगों में नवजीवन का संचार कर दिया। इन सुधारकों में स्वामी रामदास सब से मुख्य थे। उन्होंने जहां धार्मिक विचारों में जीवन और स्फूर्ति उत्पन्न की, वहां के लोगों का ध्यान अपने देश और जाति के प्रति भी आकृष्ट किया। स्वामी रामदास ने महाराष्ट्र में वह राष्ट्रीय लहर चलाई, जिसने लोगों में आत्म-सम्मान के भावों को जागृत किया। वे उपदेश करते थे कि 'जो मराठे हैं, उन सबों को मिला दो। महाराष्ट्रीय धर्म की वृद्धि करो। धर्म के लिए मरने को तत्पर रहो। धर्म के शत्रुओं को मारते जाओ'। रामदास के इन उपदेशों के प्रचार से मराठे लोगों में नवीन शक्ति का संचार हुआ।

शिवाजी—धार्मिक सुधारों के कारण मराठों में नवजीवन और संगठन तो उत्पन्न हो ही रहा था, ऐसे समय में उनमें एक महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने उन्हें एक महान शक्ति के

रूप में परिणत कर दिया । इस महापुरुष का नाम शिवाजी था। (जन्म सन १६२७) । शिवाजी के पिता शाहजी अहमदनगर की निज़ामशाही में एक सरदार थे । उन की अपनी जागीर पूना में थी। शिवाजी का बचपन पूना में अपनी माता जीजाबाई और दादाजी कोणदेव नामक ब्राह्मण के संरक्षण में व्यतीत हुआ था।

बाल्यावस्था से ही शिवाजी के हृदय में महत्त्वाकांक्षाएँ कार्य कर रही थीं । दक्षिण के मुसलमान सुल्तानों की उस समय जो दुर्दशा थी, उस से लाभ उठा कर उन्हें अपनी शक्ति के विस्तार का अच्छा अवसर हाथ लगा। अहमदनगर तब मुगलों के हाथ में जा चुका था । बीजापुर और गोलकुण्डा पर उनके आक्रमण जारी थे । बीजापुर का सुल्तान मुगलों से लड़ाई में लगा था । इस स्थिति से लाभ उठा कर शिवाजी ने अपनी जागीर के नवयुवकों की एक सेना एकत्रित की और पूना के आसपास के क़िलों पर हमला करना शुरू किया । ये क़िले शीघ्र ही शिवाजी के हाथ में आ गए।

बीजापुर के साथ युद्ध—जब बीजापुर के सुल्तान ने देखा कि शिवाजी निरन्तर उत्पात मचा रहा है, तो इसे दबाने के लिए अपने एक सेनापति अफ़ज़लखां को भेजा । अफ़ज़लखां ने चाल चल कर शिवाजी को वश में करना चाहा । उसने एक ब्राह्मण पण्डित को अपना दूत बना कर शिवाजी के पास भेजा और उस से कहलाया कि खां साहब आप से मिलना चाहते हैं । यदि आप उन से मिल कर सन्धि कर लेंगे तो न केवल सुल्तान आप के सब अपराध क्षमा कर देगा, अपितु बहुत-सी जागीर भी प्रदान करेगा । शिवाजी अफ़ज़लखां से भेंट करनेके लिए तैयार हो गए। उन्होंने बातचीत में अफ़ज़लखां के ब्राह्मण दूत से पता लगा लिया कि दाल में कुछ काला है और अफ़ज़लखां उन का वध करना चाहता है । शिवाजी पूरी तैयारी के साथ गए । अफ़ज़लखां जब

शिवाजी का स्वागत करने के लिए आलिंगन करने लगा, तो उसने शिवाजी की गर्दन ज़ोर से अपने हाथों में दबाली और मारने के लिए तलवार बाहर निकाली। पर शिवाजी भी पूरा उस्ताद था। वह बाघनख अपने कपड़ों में छिपा कर लाया था। उस ने झटपट बाघनख बाहर निकाला और उसे अफ़ज़लखां के पेट में घुसेड़ दिया। अफ़ज़लखां वहीं मारा गया। इशारा पाकर मराठा सेना भी बीजापुर की सेना पर टूट पड़ी। बहुत से बीजापुरी मारे गए और जो बचे, वे परास्त हो कर भाग गए। बीजापुर के सुल्तान ने अन्य भी सेनाएँ शिवाजी को परास्त करने के लिए भेजीं, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। अन्त में उसे सन्धि करनें के लिए विवश होना पड़ा और शिवाजी को उसने उन सब प्रदेशों का स्वामी मान लिया, जिन्हें उसने पिछले वर्षों में जीता था।

मुगल साम्राज्य से युद्ध—वीजापुर से सन्धि कर शिवाजी ने मुगलों के साथ लड़ाई प्रारम्भ की। मुगल लोग उन दिनों दक्षिण में अपनें साम्राज्य का विस्तार कर रहे थे। औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति के कारण सारे हिन्दू संसार में असन्तोष मचा हुआ था। शिवाजी ने अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक उद्घोषित किया। उस ने कहा कि मैं ने गौ और ब्राह्मण की रक्षा के लिये तलवार उठाई है। बहुत से हिन्दू धार्मिक उत्साह के साथ उस की सेना में शामिल हुए। शिवाजी ने अपने पड़ौस के मुगल राज्यों पर हमले करने शुरू किये। औरंगजेब नें शाइस्ता-खां को, जो दक्षिण में सूबेदार था, शिवाजी से लड़ने के लिये भेजा। शाइस्ताखां ने बड़ी तैयारी के साथ मराठा राज्य पर आक्रमण कर बहुत-से किले जीत लिये और पूना पर भी अधि-कार कर लिया। पर शिवाजी बड़ा साहसी था। सर्दियों की एक रात के समय जब शाइस्ताखां मौज से कैम्प में पड़ा था, शिवाजी

ने चुने हुए सिपाहियों के साथ छिप कर उस के कैम्प में प्रवेश किया। एकदम शाइस्ताखां के तम्बू पर धावा बोल दिया गया। उस का लड़का मारा गया और उसे भी चोट आई। शाइस्ताखां घबरा कर वापस लौट गया और औरंगजेब ने उस के स्थान पर शाहजादा मोअज्जम और महाराजा जसवन्तसिंह को भेजा। पर उन्हें भी विशेष सफलता नहीं हुई। इन्हीं के समय में शिवाजी ने सूरत पर हमला किया और उसे बुरी तरह लूटा।

जयसिंह और शिवाजी—औरंगजेब शिवाजी से बहुत परेशान था। आखिर उस ने अपने सब से योग्य सेनापति राजा जयसिंह को शिवाजी को वश में करने के लिये भेजा। जयसिंह जितना वीर था, उतना ही चाणाक्ष और नीतिज्ञ भी था। जयसिंह को परास्त कर सकना शिवाजी के लिये कठिन था, अतः उस ने सन्धि करनी ही उचित समझी। शिवाजी से जयसिंह ने प्रतिज्ञा की कि यदि तुम बादशाह का आधिपत्य मान लो, तो तुम्हारा राज्य जहां कायम रहेगा, वहां मुगल बादशाहत में तुम्हारा सम्मान भी खूब बढ़ेगा। शिवाजी इस के लिये तैयार हो गये और जयसिंह ने विश्वास दिला कर उन्हें आगरा में औरंगजेब के दरबार में भेजा। परन्तु जब शिवाजी बादशाही दरबार में पहुँचा, तो औरंगजेब ने उस के साथ बड़ा रूखा वर्ताव किया। उसे तीसरे दर्जे के सरदारों में स्थान दिया गया और बादशाह ने उस से बातचीत भी नहीं की। जिस मकान में उसे ठहराया गया था, उस पर पहरा लगा दिया गया। शिवाजी एक प्रकार से कैद हो गया। पर शिवाजी बड़ा चालाक और नीतिज्ञ था, सारे पहरों के रहते हुए भी वह औरंगजेब की कैद से निकल गया और महाराष्ट्र में जा पहुँचा।

शिवाजी का राज्याभिषेक—आगरे से वापस लौट कर शिवाजी ने फिर अपने राज्य का विस्तार शुरू किया। धीरे-धीरे

उस ने अपना अच्छा विस्तृत राज्य बना लिया । सन १६७४ में शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया और बाकायदा मराठा राज्य की स्थापना की । बड़ी धूम-धाम से उस का राज्याभिषेक किया गया । उस ने अपना शासन प्राचीन भारतीय शासन-विधि से शुरु किया । शासन को आठ विभागों में विभक्त कर उनके लिये पृथक्-पृथक् मन्त्री नियत किये गये । इन आठों मन्त्रियों से मिल कर 'अष्ट प्रधान मण्डल' बनता था, उस से राज्य के सब मामलों में सलाह ली जाती थी ।

शिवाजी के राज्य के दो भाग थे, एक वह प्रदेश जिसे स्वराज्य कहा जाता था । इसमें शिवाजी का बाकायदा शासन था । राज्य के दूसरे भाग को मुगलिया कहते थे । इस पर शिवाजी का बाकायदा शासन नहीं था । पर इस से मराठे लोग 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' नाम के कर वसूल करते थे । जिन स्थानों से ये कर वसूल किए जाते थे, उनकी मराठे लोग अन्य शक्तियों के आक्रमण से रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे ।

राज्यविस्तार—शिवाजी के स्वराज्य में उत्तर में कल्याण से लेकर दक्षिण में गोआ तक का प्रदेश सम्मिलित था । उस की पश्चिमीय सीमा अरब सागर थी और पूर्व में बगलाना से शुरु हो कर नासिक, पूना, सतारा और कोल्हापुर के प्रदेश उसके स्वराज्य के अन्तर्गत थे । सन १७६७ में शिवाजी ने एक बड़ा साहसपूर्ण आक्रमण किया । अपने स्वराज्य से बहुत दूर दक्षिण की तरफ़ जाकर वेल्लारी और जिञ्जी के दुर्गों को उसने जीत लिया । इससे सम्पूर्ण पश्चिम-कर्नाटक पर उसका राज्य स्थापित हो गया ।

इसमें शक नहीं कि शिवाजी भारतीय इतिहास के सब से बड़े महपुरुषों में एक है । उसने मराठों में नया जीवन फूँक कर मराठा साम्राज्य की नींव डाली । एक बिखरी हुई जाति को संगठित

कर एकसूत्र में बांधना और फिर सफलता के साथ अपना स्वतन्त्र राज्य कायम कर लेना मामूली बात नहीं है।

सम्भाजी—सन १६८० में शिवाजी की मृत्यु हुई। उसके बाद सम्भाजी मराठा राज्य का स्वामी बना। सम्भाजी निस्सन्देह बड़ा वीर और साहसी था। पर वह भोग-विलास में फँसा हुआ था। मदिरा के नशे में उसे अपने कर्तव्य और अकर्तव्य का ज़रा भी ध्यान नहीं रहता था। अपने शासन के उत्तरार्द्ध, सन १६८० ईसवी में, औरंगज़ेब ने दक्षिणी भारत पर मुगल साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति के साथ हमला किया। इस हमले स जहां बीजापुर और गोलकुण्डा के मुसलमान सुल्तानों का अन्त हुआ, वहां मराठा राज्य भी इस से बच न सका। औरंगज़ेब ने सन १६८६ में सम्भाजी को कद कर लिया और बड़ी क्रूरता से उसका वध किया। एक-एक करके मराठा किले जीत लिए गए। शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य मुगल आक्रमण की बाढ़ में बह गया।

सम्भाजी का लड़का साहू औरंगज़ेब द्वारा कैद कर लिया गया था। उसे मुगल दरबार में रखा गया। वहीं उसका लालन-पोशण हुआ।

राजाराम—साहू की अनुपस्थिति में सम्भाजी का भाई राजाराम मराठों का नेता बना। सम्भाजी के कत्ल और महाराष्ट्र की विजय से मराठे लोग घबराए नहीं। उन्होंने अपने राज्य की रक्षा के लिए बड़ी भारी तैयारी शुरू की। मराठों के दल के दल मुगल साम्राज्य के विविध प्रदेशों पर टूट पड़े। राजाराम ने भेस बदल कर दक्षिण की तरफ़ प्रस्थान किया और जिञ्जी पहुँचकर मराठा राज्य की स्थापना की। जब तक औरंगज़ेब जीवित रहा, उसने मराठों को कुचलने के लिए भरपूर कोशिश की। पर मराठे लोग नष्ट नहीं हुए। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उन्हें अपनी शक्ति बढ़ाने तथा अपना राज्य स्थापित करने का अपूर्व अवसर मिल गया।

तीसवां अध्याय

मुगल साम्राज्य का पतन

औरङ्गज़ेब के बाद दिल्ली के राजसिंहासन पर जो बादशाह बैठे, वे बलहीन और आलसी थे। अकबर जैसी नीतिकुशलता और औरङ्गज़ेब जैसा साहस उन में न था। यदि मुगल साम्राज्य के क्षीण होने की प्रक्रिया इस काल में शुरू न हो चुकती, तो सम्भवतः वे उसे सम्भाले रखते। पर इस समय उत्तर में सिक्ख, मध्य में राजपूत और दक्षिण में मराठे मुगल साम्राज्य को तहस-नहस करने में लगे हुए थे। यदि मुगल सरदारों में एकमत होता, वे मिल कर टूटते हुए मुगल साम्राज्य की रक्षा करने के लिये कोशिश करते, तो शायद उस की रक्षा भी हो जाती। पर वे भी आपस में लड़ने और अपने स्वतन्त्र राज्य कायम करने की फ़िक्र में लग गये। परिणाम यह हुआ कि विशाल मुगल साम्राज्य का पतन शुरू हो गया और उस के स्थान पर विविध राज्य कायम हो गये। सिक्खों ने पंजाब में ज़ोर पकड़ा। राजपूत बुन्देलखण्ड, राजपूताना और मध्यभारत में स्वतन्त्र हो गये। जाटों ने आगरा के आसपास अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। मराठे न केवल दक्षिणी भारत में स्वतन्त्र हो गये, अपितु अटक से कटक तक और हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक अपना विशाल साम्राज्य बनाने की महत्त्वाकांक्षा से उत्तर में आक्रमण करने लगे।

बहादुरशाह—औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद उस का पुत्र बहादुरशाह सन् १७०७ में राजगद्दी पर बैठा। उसके समय में सिक्खों के साथ युद्ध निरन्तर जारी रहे। गुरु गोविन्दसिंह अभी जीवित

थे। उन्होंने सिक्खों की उन्नति के लिये प्रयत्न जारी रखा। पर सन १७०८ में दो पठानों ने निजी शत्रुता के कारण उन्हें कत्ल कर दिया।

बंदा बहादुर—गुरु गोबिन्दसिंह सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। उन्होंने अपने बाद के लिये कोई गुरु निश्चित नहीं किया। पर यह व्यवस्था की कि ग्रन्थ साहब ही गुरु का कार्य करे। ग्रन्थ साहब में सिक्ख गुरुओं की वाणियों का संग्रह है। गुरु गोबिन्दसिंह ने धार्मिक दृष्टि से जहां ग्रन्थ साहब को गुरु बनाया, वहां वह सिक्खों का सैनिक नेतृत्व बन्दा को सौंप गये। बंदा बैरागी सम्प्रदाय का था और युद्ध विद्या तथा सेना संचालन में बड़ा निपुण था। उसने गुरु गोबिन्दसिंह के लड़कों की हत्या का बदला लेने के लिए सरहिन्द पर हमला किया और वहां के फौजदार को परास्त कर सरहिन्द पर अपना अधिकार कर लिया। बहुत देर तक बन्दा मुगलों से लड़ता रहा। बहादुरशाह तथा उस के उत्तराधिकारियों को बन्दा के कुचलने में बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी। अन्त में सन् १७१६ में बादशाह फरुरुख-सियर उसे पकड़ने में समर्थ हुआ। बन्दा का बड़ी निर्दयता के साथ वध किया गया। अन्य भी बहुत से सिक्खों को कत्ल किया गया। पर इन अत्याचारों से सिक्ख दबे नहीं। उन की शक्ति निरन्तर बढ़ती ही गई। अन्त में नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के बाद जब मुगल साम्राज्य तहस-नहस हो गया, तो सिक्खों ने पंजाब में अपने अनेक राज्य कायम कर लिए।

बहादुरशाह के उत्तराधिकारी—सन १७१२ में बहादुरशाह मर गया। उस के बाद उसका पुत्र जहांदारशाह बादशाह बना। परन्तु उनकी शक्ति नाममात्र को ही थी। असली ताकत मुगल सरदारों के हाथ में थी, जो आपस में लड़-झगड़ रहे थे। कुछ महीनों बाद जहांदारशाह के भतीजे फ़ररुख सियर ने विद्रोह किया

और स्वयं राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। उस के समय में राज्य की वास्तविक शक्ति दो सैयद बन्धुओं के पास थी, जिन के नाम हुसैनअलीखां और अब्दुल्लाखां थे। ये फररुखसियर को कठपुतली की तरह नचाते थे और जो चाहते थे, उससे कराते थे। कुछ समय बाद फररुखसियर को सैयद बन्धुओं का यह शासन असह्य हो गया। उसने स्वतन्त्र होने की चेष्टा की। इस पर सैयदों ने उसे पदच्युत कर दिया और एक-एक कर के तीन शाहज़ादों को मुगल बादशाहत की गद्दी पर बैठाया। अन्त में मुहम्मदशाह बादशाह बना। उसने सन १७२० से १७४८ तक राज्य किया। उसके समय में भारत पर फिर विदेशियों के आक्रमण हुए।

नादिरशाह का आक्रमण—सन १७३९ में भारतवर्ष पर पर्शिया के बादशाह नादिरशाह ने आक्रमण किया। बचपन में वह एक गडरिया था, पर अपनी योग्यता और वीरता से उस ने असाधारण उन्नति की और धीरे-धीरे पर्शिया की राजगद्दी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने साम्राज्य वृद्धि और लूटमार की इच्छा से एक बड़ी भारी सेना लेकर भारत पर चढ़ाई कर दी। मुहम्मदशाह के सेनापतियों ने करनाल के पास उसका मुकाबला किया। नादिरशाह की विजय हुई और उसने बड़ी धूमधाम के साथ दिल्ली में प्रवेश किया।

दिल्ली में नादिरशाह ने खूब लूट मचाई। कत्लआम का हुक्म दे दिया गया। हज़ारों आदमी कत्ल हुए और दिल्ली में जो कुछ भी कीमती सामान और धन-सम्पत्ति थी, उन सब को पर्शिन सिपाहियों ने दिल खोल कर लूटा। बहुत से मोती, हीरे, जवाहरात, हाथी, घोड़े, हथियार और कैदी नादिरशाह अपने साथ लेगया। दिल्ली की लूट में शाहजहां द्वारा बनवाया हुआ मयूर सिंहासन भी नादिरशाह के हाथ लगा। वह उसे भी अपने साथ लेगया।

नादिरशाह के भयंकर आक्रमण से मुगल साम्राज्य जड़ों से हिल गया। पहले ही मराठों, सिक्खों और राजपूतों ने उसे बिलकुल खोखला कर दिया था, जो कुछ शेष था, वह अब नष्ट हो गया। इस आक्रमण के बाद मुहम्मदशाह नाम को ही भारत का बादशाह रह गया।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण—नादिरशाह की मृत्यु के बाद अफ़ग़ानिस्तान में अहमदशाह अब्दाली ने अपना राज्य कायम किया। वह बड़ा वीर और साहसी था। उसने भारत पर कई बार चढ़ाई की और सन १७५७ में दिल्ली को बुरी तरह लूटा। इस समय भारत में मरहठों की शक्ति बहुत बढ़ चुकी थी। उत्तरीय भारत के अधिकांश प्रदेश उनके हाथ में आ चुके थे। दिल्ली का मुगल बादशाह उनके हाथ में कठपुतली के समान था। अहमदशाह अब्दाली का सब से महत्त्वपूर्ण आक्रमण सन १७६१ में हुआ। मराठों ने उसका वीरता के साथ मुकाबिला किया। पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में दोनों सेनाओं की भयंकर लड़ाई हुई। मराठे लोग परास्त हुए। इस युद्ध का वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

इकतीसवां अध्याय

मराठों का साम्राज्य

औरंगज़ेब के हमलों से मराठों के क़िले तो मुगल सेनाओं के हाथ में आ गए थे, पर मराठे लोग परास्त नहीं हुए थे। रामदास के उपदेशों और शिवाजी की वीरता तथा संगठन शक्ति से उनमें जो नवजीवन और स्फूर्ति उत्पन्न हो चुकी थी, उसे कुचल सकना किसी भी फौज़ के लिए असम्भव था। उन्होंने मुगलों से लड़ाई बन्द नहीं की। उनके दल के दल चारों तरफ से मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़े। वे किसी प्रदेश पर अपना स्थिर शासन स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करते थे। वे जहां जाते, चौथ और सरदेशमुखी नामक कर वसूल करते। अगर उन प्रदेशों के सूबेदार इन करों को नियमपूर्वक देते रहते, तब तो ठीक था। अन्यथा, मराठे लोग उन पर आक्रमण करते। इस ढंग से मराठों ने अपनी शक्ति और प्रभाव का विस्तार करना शुरू किया।

साहू—सन १७०७ में औरंगज़ेब की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने मराठों में फूट डालने का अच्छा उपाय निकाला। सम्भाजी का जो लड़का साहू मुगल दरबार में नज़रबन्द था, उसे छोड़ दिया गया। उधर मराठों में राजाराम की मृत्यु हो चुकी थी। उसका लड़का शिवाजी इस समय मराठों का राजा था। वह अभी नाबालिग था, अतः उसके नाम पर राजाराम की विधवा रानी ताराबाई राज्य का संचालन करती थी। साहू के छूटते ही मराठों में दो पक्ष हो गए। मराठे सरदारों में आपस के ईर्षा-द्वेष की कमी नहीं थी। अपनी उन्नति की अभिलाषा से कुछ सरदारों ने साहू का पक्ष लिया और कुछ ने ताराबाई का। कई वर्षों तक मराठे लोग आपस में लड़ते रहे पर अन्त में साहू सफल हुआ।

पेशवाओं का उत्कर्ष—साहू में राज्य करने की योग्यता नहीं थी. मुगल दरबार में बने रहने के कारण वह उत्साह तथा स्फूर्ति से सर्वथा शून्य हो गया था और अपना सारा समय भोग-विलास में नष्ट करता था। उसने राज्य का सम्पूर्ण भार अपने ब्राह्मण मन्त्री बालाजी विश्वनाथ के सपुर्द किया हुआ था। बालाजी विश्वनाथ पेशवा के पद पर नियत था। पेशवा का मतलब है मुख्य प्रधान या प्रधान मन्त्री। शासन की सारी ज़िम्मेवारी पेशवा के पास थी। बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका लड़का बाजीराव पेशवा बना और इस प्रकार पेशवा का पद एक वंश में स्थिर हो गया। इस तरह मराठा राज्य के वास्तविक कर्ता-धर्ता पेशवा बन गए और शिवाजी के वंशज छत्रपति राजा नाममात्र के ही राजा रह गए।

बालाजी विश्वनाथ (१७१४–२०)—पहला पेशवा बालाजी विश्वनाथ बड़ा ही योग्य और चतुर नीतिज्ञ था। उस ने साहू के विरोधी सरदारों को परास्त किया और मराठा-शक्ति को संगठित करने के लिये बड़ा भारी कार्य किया। इन दिनों दिल्ली की मुगल बादशाहत में बहुत झगड़े चल रहे थे। सैयद-बन्धु जिसे चाहते, गद्दी पर बैठाते और जिसे चाहते, गद्दी से उतारते। बादशाह फ़र्रुखसियर ने सैयद बन्धुओं की अधीनता से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया, तो उन्हों ने उसे पदच्युत करने के लिए तैयारी की। सैयद हुसैन अलीखां ने फ़र्रुखसियर के खिलाफ़ मराठों की सहायता मांगी। बाला जी विश्वनाथ की सेना के ज़ोर पर ही सैयद बन्धुओं ने फ़र्रुखसियर को गद्दी से उतार कर उस का वध किया। इस सहायता के बदले में बालाजी विश्वनाथ को सम्पूर्ण दक्षिणी भारत से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का हक प्राप्त हुआ। इस समय से मराठों

की शक्ति बहुत बढ़ गई। दक्षिणी भारत एक प्रकार से उन के अधिकार में चला गया। मुगल साम्राज्य के ढीले पड़ते ही उन्होंने अपने असली मराठा राज्य को तो स्वाधीन कर ही लिया था, अब चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर सकने के कारण दक्षिणी भारत पर भी उन का अधिकार विस्तृत हो गया।

बाजीराव (१७२०–४०)—दूसरा पेशवा बाजीराव था। वह पेशवाओं में सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसके समय में मराठे लोग केवल दक्षिणी भारत तक ही सीमित नहीं रहे। उन्हों ने मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि पर भी आक्रमण करने शुरू किए। मराठों की नीति यह थी कि वे बड़े-बड़े सरदारों के नेतृत्व में विविध प्रदेशों पर हमले करते और वहां अपने विविध राज्य कायम करते। इस प्रकार बाजीराव के समय में मराठों के चार नये राज्य कायम हुए। राघोजी भोंसले ने मध्यभारत में अपना राज्य स्थापित किया और नागपुर को अपनी राजधानी बनाया। गुजरात में महादजी गायकवाड़, मालवा और इन्दौर में मल्हारराव होल्कर और ग्वालियर में राघोजी सिन्धिया ने अपने राज्य बनाये। ये चारों सरदार पेशवा को अपना अधिपति स्वीकृत करते थे। जिन नये प्रदेशों पर ये सरदार विजय करते थे, वे इन्हीं की अधीनता में रहते थे। इस कारण ये सदा अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते थे और उत्तरी भारत के विविध प्रदेशों पर हमला करते रहते थे। इन लोगों ने गंगा-यमुना के द्वाबा तक हमले किए और वहां के मुगल शासकों के साथ लड़ाई की। मुगल साम्राज्य इस समय में इतना कमज़ोर पड़ चुका था कि मराठों को रोक सकना उस के लिए सम्भव नहीं था।

बालाजी बाजीराव (१७४०–६१)—बाजीराव के मरने

के बाद उस का लड़का बालाजी बाजीराव पेशवा बना। इस के समय में मराठा साम्राज्य अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुँच गया। राघोजी भोंसले ने बंगाल और उड़ीसा पर आक्रमण किया। उड़ीसा मराठों के हाथ चला गया और बङ्गाल से चौथ और सरदेशमुखी वसूल की जाने लगी।

एक मराठी सेना ने रूहेलखण्ड पर आक्रमण किया और पेशवा के भाई रघुनाथराव ने पंजाब पर विजय प्राप्त की। यहां तक कि सिन्ध नदी के तट पर स्थित अटक के दुर्ग पर मराठों का भगवां झण्डा फहराने लगा।

पानीपत का तीसरा युद्ध—इस से पहले पंजाब पर अहमदशाह अब्दाली विजय प्राप्त कर चुका था। उसकी तरफ़ से शासन करने के लिए वहां एक सूबेदार नियत था। रघुनाथराव ने अब्दाली के सूबेदार को निकाल कर पंजाब पर अपना सूबेदार नियत किया। जब अहमदशाह अब्दाली ने यह समाचार सुना, तो उसे बड़ा क्रोध आया। उस ने भारत पर पुन: आक्रमण किया। पंजाब के मराठा सूबेदार को परास्त कर दिया गया और अब्दाली ने दिल्ली पर अपना अधिकार जमा लिया। जिस समय यह समाचार मराठों को मालूम हुआ, उन्हों ने युद्ध के लिए बड़ी भारी तैयारी की। सदाशिवराव भाऊ और पेशवा के पुत्र विश्वासराव ने बीस हज़ार घुड़सवार, दस हज़ार पदाति और एक बड़ा तोपखाना लेकर दिल्ली की तरफ़ प्रस्थान किया। तोपखाने का सेनापति इब्राहीम खां गर्दे था, जो अपने तोपखाने के कारण दक्षिण में बहुत नाम पैदा कर चुका था। सारे मराठा सरदार अपनी-अपनी सेनायें लेकर पेशवा की सहायता के लिए आए। अनेक राजपूत रियासतों ने भी सहायता भेजी। पहले दिल्ली को जीता गया। जिस दिल्ली पर अफ़गान और मुगल

सम्राट् सदियों से शासन करते आ रहे थे, उस पर मराठों का अधिकार हो गया। पेशवा के लड़के विश्वासराव को दिल्ली का 'मराठा सम्राट्' उद्घोषित करने की योजना की गई। मराठों का साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

पर उधर अब्दाली भी शान्त नहीं बैठा था। वह विविध अफगान और मुगल सरदारों की सहायता प्राप्त कर शक्ति संचय करने का प्रयत्न कर रहा था। अन्त में पानीपत के प्रसिद्ध रण-क्षेत्र में, सन १७६१ में मराठों और अब्दाली की सेनाओं का घनघोर संग्राम हुआ। सदाशिवराव भाऊ ने अपने उद्दण्ड व्यवहार से जाट और राजपूत लोगों को नाराज़ कर दिया था। वे उस का साथ छोड़ चुके थे। युद्ध में भी सदाशिवराव ने समझदारी से काम नहीं लिया। मराठे लोग परास्त हुए। सदा-शिवराव, विश्वासराव और अन्य बहुत से मराठे सरदार युद्ध में मारे गए। मराठा सेना बुरी तरह से नष्ट हुई।

पानीपत की उस पराजय से मराठा शक्ति को बहुत धक्का लगा। उनकी उन्नति का काल अब समाप्त हो गया और पतन प्रारम्भ हुआ।

इस समय भारत में एक अन्य विदेशी जाति अपनी शक्ति का विस्तार कर रही थी। इस ने हिन्दुकुश पर्वतमाला को पार कर भारत में प्रवेश नहीं किया था। यह समुद्र के रास्ते भारत में आई थी। इस का नाम अंग्रेज़ जाति है। मराठों के कमज़ोर पड़ने पर अंग्रेजों की शक्ति तेजी के साथ बढ़ने लगी।